योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 29

फर.-मार्च 1997

अंक 11-12

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई, आगरा

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

श्री गोविन्द सोनी

ब्र० राजेश चन्द्र शर्मा

संयुक्तांक
फरवरी-मार्च १९९७

इस अंक में पढ़िए

❀ मुहुस्त्रिषेमिरभवच्छरणेषु भयम् १
❀ श्री गुरुदेव के तीन प्रकार का मार्ग-दर्शन २
(विशेष लेख)
—योगिराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज
❀ भगवान की स्मृति ही सबसे बड़ी सम्पत्ति ६
(सम्पादकीय)
❀ अपने मन पर दृष्टि डालो ९
—विष्णुप्रसाद व्यास
❀ योग द्वारा ही विश्व शान्ति सम्भव है ११
—डा० विजय सिंह
❀ सन्तों की वाणी में सोऽहम् जप का महत्व १४
—श्री आर० सी० ठाकुर
❀ श्री महाप्रभु जी की सर्वव्यापकता २३
—श्री अवनीश कुमार भटनागर
❀ आसक्ति बन्धन-कारक २५
—डा० जयनारायण राय
❀ ठाकुर राजकुमार को अशरण-शरण २९
—श्री केशवदेव उपाध्याय
❀ श्रीमद् गुरुणां गुणानुवादमात्रम् (कविता) ३५
—श्री द्वारका प्रसाद शर्मा
❀ श्री गुरुदेव की कृपापात्रा—श्रीमती सुशीला देवी ३६
—राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)
❀ सद्गुरु वैद्य (कविता) ४२
—डा० श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी
❀ पर-अपरा एवम् योगारूढ़ मनुष्य ४३
—पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक
❀ गुरुवर दो ऐसा वरदान ! (कविता) ४७
—श्री यशपाल जैन
❀ पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम् ४८
संकलनकर्त्री - कुमारी सम्पदा शर्मा

वार्षिक मूल्य ६० रु० । द्विवार्षिक मूल्य ११० रु० ।
इस अङ्क का मूल्य १० रु० ।

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्माबपुर) आगरा

वर्ष २६
अङ्क ११, १२

ध्यायं ध्यायं वदित्वं परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्योमृत्योर्मुखं विवरती, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थं बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशात्,
आप्ताप्तानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः॥

फरवरी-मार्च
१९९७

मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम्

नृषु तव मायया भ्रममयीष्ववगत्य भृशं
त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्।
कथमनुवर्तितां भवभयं तव यद् भ्रुकुटिः
सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम्॥

अर्थात्

हे भगवन्! सभी जीव आपकी माया से भ्रम में भटक रहे हैं, अपने को आपसे पृथक् मानकर जन्म-मृत्यु का चक्कर काट रहे हैं। परन्तु बुद्धिमान् लोग इस भ्रम को समझ लेते हैं और सम्पूर्ण भक्ति भाव से आपकी शरण ग्रहण करते हैं, क्योंकि आप जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुड़ानेवाले हैं। यद्यपि शीत, शीष्म और वर्षा—इन तीन भागों वाला कालचक्र आपका भ्रू विलास-मात्र है, वह सभी को भयभीत करता है, परन्तु वह उन्हीं को बार-बार भयभीत करता है जो आपकी शरण नहीं लेते। जो आपके शरणागत भक्त हैं, उन्हें भला जन्म-मृत्यु रूप संसार का भय कैसे हो सकता है?

श्री गुरुदेव के तीन प्रकार का मार्ग दर्शन

✻ योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने 'सिद्धयोग' के अपने पिछले अनेक लेखों में गुरुदेव का स्वरूप भलीभांति समझा दिया है। मोटे शब्दों में भगवान व्यासदेव ने "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए कहा है कि जहां पर कालावच्छेदवाद काल नहीं पहुंचता वहीं सत्ता की भी गुरु है इसलिये यह सर्वशक्ति-गुरुदेव अपने वितीत शिष्यों के उत्थान अनेक प्रकार से कृपा करते हैं। उनका कोई शिष्य दुःख द्वन्द्व में पड़ा रह सके एवं परम श्रेयभागी बन सके।

गुरुदेव का प्रथम शक्ति प्रक्षेप

गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए हमारे पूर्वजों ने बतलाया है गृणाति शब्दादीन्-उपदिशति सः गुरुः अर्थात् जो आप्त पुरुष उन्हें द्वारा उपदेश करते हैं तथा उस उपदेश द्वारा अपने शिष्यों को मार्ग दर्शन करा करके परम श्रेय की ओर ले जाने के लिये प्रयत्नशील है वह अधिकारी लोगों के लिए उनका प्रथम शिक्षण है। शक्तिवान गुरुदेव की वाणी पतन से रहित हुआ करती है अर्थात् अमोघ होती है। आप्तोपदेश कभी भी व्यर्थ नहीं होता। योग-दर्शन में जहां पर आगम प्रमाण का वर्णन किया गया है वहां पर उसका व्याख्यान इन शब्दों में किया है "आप्त पुरुष के द्वारा देखा व सुना हुआ अर्थ दूसरे के मन में अपना बोध प्राप्त कराने के लिए शब्दोपदेश के द्वारा दिया जाता है। वह सुनने वाले साधक के लिए आगम प्रमाण है अथवा गुरुदेव अपने अनुभव के आधार पर जो भी शब्दोपदेश करते हैं वे सब आगम प्रमाण कहलाता है। जिन शब्दों का उपदेश करने वाला वक्ता आप्त पुरुष नहीं है उनकी वाणी मिथ्या हो सकती है किन्तु जिन्होंने यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया है और शुद्ध मन से अपने शिष्यों को ज्ञान का उपदेश कर रहे हैं यह गुरुदेव की प्रथम शक्ति प्रक्षेप है जिसके द्वारा अधिकारी शिष्य तत्काल शिक्षा पाते ही अपने विषय के पारदर्शी बन जाते हैं।

गुरुदेव का द्वितीय शक्ति प्रक्षेप

उसके बाद गुरुदेव का दूसरा शक्ति प्रक्षेप शिष्य को मिलता है। अस्मितानुगत समाधि में स्थिति प्राप्त करने वाले योगी में चित्त निर्माण करने की योग्यता आ जाती है। अनेक निर्माणित चित्तों का मार्ग दर्शन प्रधान चित्त हुआ करता है। योगी इस प्रकार के निर्मापित चित्तों के द्वारा अपने शिष्यों के सामने सूक्ष्मत्व प्रकट होकर अनेक प्रकार की क्रिया का उपदेश दिया करते हैं तथा हिताहित का ज्ञान कराया करते हैं जैसे प्राचीन काल में भगवान कपिलदेव ने निर्माण चित्त

के द्वारा अपने शिष्य आसुरी को सांख्य का उपदेश दिया था। इसी प्रकार से योगी गुरु भी निर्माण चित्तों के द्वारा शिष्यों को हितोपदेश दिया करते हैं। और उनके अज्ञान-अन्धकार को दूर किया करते हैं।

एक उदाहरण—जिला रोहतक (हरियाणा) के पास पहरावर नाम का एक गौड़ ब्राह्मणों का गाँव है। उस गाँव में एक सिद्ध-योगिराज के शिष्य धजाराम नाम के निवास करते थे। श्री गुरुदेव के अनुग्रह से उनको अन्तर्स्थिति प्राप्त थी। ध्यानानुभव बहुत ही उत्कृष्ट था। श्री गुरुदेव के अनुग्रह से जब भी वह ध्यान में बैठते थे तभी इष्टदेव के पावन दर्शन प्राप्त होते और गुरुदेव का उपदेश प्राप्त होता। अकस्मात् कोई संस्कार उदय हुआ। उनके गुरुदेव ने निर्माण चित्त के द्वारा ध्यान में आकर आदेश दिया—बेटा! दो तीन दिन बाद तुम्हें एक जहरीला सर्प डस लेगा और उसके काटने से तुम्हारी मृत्यु उपस्थित हो जायेगी किन्तु तुम विवेक-ज्ञान की ओर बढ़ रहे हो इसलिये तुम्हारे शरीर पर गुरुदेव का अधिकार है, तुम मर नहीं सकोगे। समय पर गुरुदेव तुम्हारी अवश्य रक्षा करेंगे। ध्यानावस्था में गुरुदेव की इस प्रकार की आज्ञा को सुनकर वह पवित्रात्मा साधक अधिक भयभीत तो नहीं हुआ क्योंकि उसकी रक्षा का भार उसके गुरुदेव ने अपने ऊपर स्वयं ले लिया था, किन्तु फिर भी अपनी सुरक्षा के लिये राजा परीक्षित की भांति बड़ा सुप्रबन्ध कर लिया। वह दो दिन तक अपने घर से बाहर नहीं निकला। किन्तु संस्कार प्रबल था। होनहार प्रबल थी और साथ ही उस साधक को अपने गुरुदेव का अनुग्रह प्राप्त करना ही था। दूसरे दिन जो सर्प काटने का उसका निर्दिष्ट दिन था उसी दिन उसके गाँव के अन्य साथी उसे सायंकाल के समय भ्रमणार्थ बाहर खेतों में ले गये और एक जगह उसे नाली खोदने में लगा दिया। उसके मन से भी यह ख्याल निकल चुका था कि अब तक मुझे सर्प ने नहीं काटा है तो आगे और क्या काटेगा। उस बेचारे को इतना ज्ञान नहीं था कि यह होनहार ही तुमसे नाली खुदवा रही है। यह नाली खोदना ही सर्प काटने का कारण बनेगा। उस साधक ने लोहे का फावड़ा उठाकर ज्योंही नाली में मारा उसके पास में ही एक बिल निकला और उस बिल से अकस्मात् बड़े वेग से एक काला सर्प निकला और उसने पैर की उँगली में काट लिया। सर्प इतना विषैला था कि काटते ही वह साधक अन्धा हो गया किन्तु सर्वसामर्थ्यवान गुरुदेव उस महा अन्धेरे में भी उसके सामने आ गये और कहा—बेटा! यह होनहार ही थी, तुम्हें सर्प ने काट ही लिया। अब तुम जल्दी ही घर को लौट चलो तुम्हें दिखलाई नहीं देता है किन्तु हम तुम्हें दीखते रहेंगे, हमारे साथ-साथ चले आओ। यह लो हम तुम्हें एक जड़ी दिखलाते हैं इस जड़ी के प्रभाव से ४ घण्टे बाद यह सब विष वमन होकर निकल जायेगा और तुम ठीक हो जाओगे, तुम यहाँ से जाने के बाद बोल नहीं सकोगे किन्तु साहस करके अपनी माँ को तुम जल्दी से हमारी बतलाई हुई बातें कह देना। उसके परम गुरुदेव ने निर्माण चित्त के द्वारा यह सब उपदेश किया और उसी अवस्था में ही कोई दिव्य औषधि अथवा दिव्य औषधि के रूप में अपनी कृपा का संचार किया। अपनी माता को श्री गुरुदेव के बतलाये हुए दो शब्द कहकर वह साधक बेहोश हो गया। किन्तु परिणाम वही हुआ जो गुरुदेव ने दो दिन पूर्व बतला दिया था।

ठीक चार घण्टे बाद उस बच्चे को वमन हुई जिसके द्वारा उसके मुख से काला-काला जहर निकल जाने से उसकी आँखें खुल गईं। आँखें खुलने के बाद श्री गुरुदेव की परम अनुकम्पा को उसने सब घर वालों के सामने बतलाया। शनैः शनैः वह बालक बिलकुल ठीक हो गया और पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गया। यह श्री गुरुदेव के निर्माण चित्त के द्वारा की जाने वाली सहायता व शक्ति प्रक्षेप के दूसरे प्रकार का उदाहरण है। इसी प्रकार से गुरुदेव सूक्ष्म शरीर से अपने शिष्यों के सामने आकर उपदेश दिया करते हैं और अनेक प्रकार से उनके हित साधन किया करते हैं।

श्री गुरुदेव का तृतीय शक्ति प्रक्षेप

तीसरी श्रेणी उन परम पुण्यात्मा साधकों की है जिनके अन्तःकरण में श्री गुरुदेव का पवित्र तेज बराबर हर समय प्रकाशित रहा करता है और उनको स्वतः ही अनेक ज्ञान धारायें विकसित होती रहा करती हैं। गुरुदेव के परम अनुग्रह से उनको निम्न श्रेणियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती। उनका मन चटपट ही ऊँची स्थितियों में भ्रमण करने लगता है। उनको गुरुदेव कोई शाब्दिक उपदेश नहीं करते किन्तु गुरुदेव की परम कृपा से उनके अपने हृदय में ही सत्य बोध होने लगता है, ऐसे साधक ऋतम्भरा प्रज्ञा वाले हो जाते हैं। ऐसा योगी जो ऋतम्भरा को प्राप्त हो जाता है उसकी सत्य-संकल्पता में कोई शंका की गुञ्जाइश ही नहीं रहती। गुरुदेव की इस प्रकार की तीसरी मदद हुआ करती है जो उसकी बुद्धि में ही प्रकट हो जाती है जो उसके गुरुदेव के शुद्ध संकल्प का परिणाम होता है। इस विषय में मैंने अपने गुरुदेव जी की अनेकों घटनाओं का स्वयं अनुभव किया है।

उदाहरण—एक ब्रह्मचारी[1] ऋषिकेश योग साधन आश्रम में योग-योगेश्वर श्री श्री प्रभुजी गुरुदेव महाराज के चरणारविन्द में वास करता था। अकस्मात् उसको अपने घर से एक सूचना मिली कि उसका पिता बहुत बीमार है उसने अपने पिता की तकलीफ में सेवा करने के लिये श्री गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त की और साथ में यह भी पूछा कि वह अपने घर जाकर क्या करे और भावी जीवन का कार्यक्रम क्या होना चाहिये। श्री गुरुदेव ने आदेश दिया कि घर जाने पर तुम्हारा पिता ही बतलायेगा। तुम इस समय जाकर उनकी मन लगाकर सेवा करो, सम्भव है उनका यह शरीर न रहे। अतः तुम अपने पिताजी का पवित्र आशीर्वाद अवश्य प्राप्त करना। वह ब्रह्मचारी अपने घर गया और अपने पिताजी की मन लगाकर सेवा की। शनैः शनैः वह समय आ ही गया जिसका निर्देश सर्व समर्थ गुरुदेव ने पहले से ही कर दिया था। ब्रह्मचारी के पिता भी

---

1. यह ब्रह्मचारी योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज स्वयं थे। अपने पिताजी के अन्तिम समय की यह घटना वे स्वयं अपने श्रीमुख से अपने बच्चों को प्रायः बतलाया करते थे।

योगाभ्यासी थे और कुछ ही समय पहले गुरुदेव से योग दीक्षा प्राप्त की थी जिसके फलस्वरूप उनका ध्यानयोग भी अच्छा चलता था। वे ध्यानाभ्यास से अपने-अपने को पवित्र बना चुके थे। नश्वर शरीर का पतन तो होता ही है। अन्तिम काल में ब्रह्मचारी ने अपने पिता से कोई आज्ञा प्राप्त करनी चाही तो उनके पिताजी ने उनको उपदेश दिया कि बेटा! मेरा यह अन्तिम समय है, मैं एक घण्टा या आधा घण्टा अधिक से अधिक तुम्हारे पास और हूँ। इस समय तुम अपना मन मेरी ओर मत लगाओ ताकि मेरे चित्त की वृत्ति तुम्हारी ओर न बदले। मेरी आज्ञा यह है कि तुम श्री प्रभुजी की आज्ञाओं का ही पालन करना, कोई कदम उनकी आज्ञा के विरुद्ध मत उठाना। उस ब्रह्मचारी ने अपने पिताजी के आदेशों को अपने मन में रख लिया। अपने पिताजी के देहावसान के पश्चात् जब ब्रह्मचारी जी श्री प्रभुजी के पास आये तो उन्होंने स्वयं ही पूछ लिया—बेटा! तुम्हारे पिता ने तुम्हें क्या आज्ञा दी। उसने अपने पिता के अन्तिम समय का सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस ब्रह्मचारी ने अपने जीवन को उसी प्रकार से लगा दिया जिस प्रकार का निर्देश श्री प्रभुजी ने उसके पिता के मन में प्रेरणा करके पिता के मुख से कहलाया। यह है श्री गुरुदेव की तीसरी प्रकार की प्रेरणा व शक्ति प्रक्षेप का प्रकार। यह प्रेरणा साधक को उत्तरोत्तर बल देती रहा करती है। सर्व समर्थ गुरुदेव या दूसरे शब्दों में वह सर्वशक्तिमान परमात्मा उत्तम अधिकारी को अपने आप ही इस प्रकार की प्रेरणा देता रहता है जिससे उसकी मदद होती रहे और साधक ऊँचा बढ़ता रहे। यह परमावश्यक है कि योग की इस निधि को अपने अन्दर विलीन कर लेने के लिये साधक को अपना जीवन तपोमय बनाना चाहिये। तप व ब्रह्मचर्य के द्वारा जो अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लेता है उस योगी को बराबर सद्गुरुदेव की अन्तःप्रेरणायें प्राप्त होती रहा करती हैं।

★ अपने प्रति सच्चे बनिये और संसार की अन्य किसी बात की ओर ध्यान न दीजिये।

× × ×

★ तुम एक ही साथ इन्द्रियों के दास और विश्व के स्वामी नहीं बन सकते।

× × ×

★ दूसरों की आँखों से अपने आपको देखने का स्वभाव मिथ्या अहङ्कार और आत्मश्लाघा कहलाता है।

× × ×

★ बुरे विचार, सांसारिक इच्छाएँ झूठे शरीर और झूठे मन से सम्बन्ध रखती हैं। वे अन्धकार की चीजें हैं।

सम्पादकीय :—

भगवान की स्मृति ही सबसे बड़ी सम्पत्ति

सम्पत्ति और विपत्ति का शाब्दिक अर्थ तो प्रायः सभी जानते ही हैं किन्तु योगियों और भक्तों की दृष्टि में इन दो शब्दों का अर्थ बहुत व्यापक एवम् गहन है। भक्तों का उद्घोष है—

विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः ।

अर्थात् भगवान का विस्मरण ही सबसे बड़ी विपत्ति है और नारायण की स्मृति या स्मरण ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है। भक्तों का अनुभव है कि जिस क्षण मन से भगवान का स्मरण छूटा उसी क्षण दुःखों का उदय होने लगता है। क्योंकि स्मरण के छूटते ही चित्त के दोष व दुर्गुण चित्त में अपना स्थान बना लेते हैं। पूज्यपाद अपने गुरुदेव जी उन्हीं भावों को पुष्ट करते हुए कहा करते थे कि जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता। श्री प्रभु जी के पादपद्मों का चिन्तन करने वाले का सदा मंगल ही होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी मानस में इन्हीं भावों की पुष्टि की है।

कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

जिसका मन अपने इष्ट का चिन्तन एवं भक्ति से परिपूरित रहा करता है प्रेत, पिशाच एवम् राक्षस उसको कभी स्पर्श नहीं कर सकते। पढ़िये श्रीमद्भागवत् के इन शब्दों को—

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा
भक्ति युक्त मनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्वेत् ।

अर्थात् जिनका मन भक्ति से युक्त है उनको प्रेत, पिशाच, असुर, राक्षस कभी छू भी नहीं सकते। भगवान के स्मरण को छोड़कर जो विषयों में अनुराग करने वाले हैं उनको बहुत ही भाग्यहीन माना गया है। तुलसीदास जी मानस में भगवान शिव की कही बात लिखते हुए कहते हैं—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होई विषय अनुरागी।

अन्यत्र भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त हैं—

ते नर नरक रूप जीवित जग भवभंजन पद विमुख अभागी।

अभिप्राय यह है कि उनका बड़ा दुर्भाग्य है जिनकी भगवान के चरणों में प्रीति नहीं है : भगवान के चरणों को अपने हृदय में धारण करने वाले बड़भागी हैं, धन्य हैं ऐसे लोग जो लक्ष्मी के विलास की वस्तुओं को भी वमन की भाँति त्याग देते हैं।

रमा विलासु राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ।

वस्तुतः जिस पर भगवान अनुग्रह करना चाहते हैं तो उस भक्त के ऐश्वर्य, धन, मान एवम् अन्य सामग्रियों को छीन लेते हैं । भगवान कहते हैं—

यस्याहमनु गृह्णामि हरिष्ये तद्धनम् शनैः ।

जिस पर मैं कृपा करता हूँ धीरे-धीरे उसके धन आदि छीन लेता हूँ । इस पर भक्त पहले तो चिल्लाता-रोता है किन्तु धीरे-धीरे उसकी समझ में आ जाती है कि भगवान ने कृपा करके ऐसा किया है ताकि उसका स्मरण अविच्छिन्न रूप से बना रहे । सभी आश्रयों के छूट जाने पर भगवान ही एकमात्र आश्रय बन जाते हैं । भगवान यदि सहज रूप से स्मरण में नहीं आते हैं तो भक्तों की एक और भी शैली है जिसमें वह भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु ! आप हमें विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ दें ताकि उनमें हम आपको याद कर सकें । पाण्डवों की माता कुन्ती वसुदेव की बहिन तथा कृष्ण की बुआ थी । वह भगवान कृष्ण से प्रार्थना करती है—

विपदः सन्तु न शाश्वत तत्र-तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम् ।।

अर्थात्, हे जगतगुरु ! आप हमें निरन्तर दुःख दें ताकि हम आपको याद करें और आपके दर्शन हों । आपके दर्शन से पुनः संसार का व माया का दर्शन नहीं होता है । भगवान की स्मृति यदि बनी रहे तो इसका फल श्रीमद्भागवत् में इस प्रकार बतलाया है—

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ।
सत्वस्य शुद्धिम् परमात्मभक्तिम् ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ।।

अर्थात् यदि भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की स्मृति सदा बनी रहती है तो उसके प्रभाव से समस्त पापों का नाश होता है, कल्याण की प्राप्ति, अन्तःकरण की शुद्धि, परमात्मा की भक्ति और वैराग्ययुक्त ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति स्वतः हो जाती है । श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि जिस प्रकार कुतुबनुमा (कम्पास) की सुई हमेशा उत्तर दिशा की ओर रहती है उसी प्रकार से साधक को अपनी वृत्ति इष्ट के चरणों में लगाये रखना चाहिये । भगवान को नित्य स्मरण करना बहुत कठिन कार्य है । जब मनुष्य के क्लिष्ट कर्म अर्थात् पाप कर्म सामने आते हैं तो बुद्धि तमोच्छादित हो जाती है । जिससे स्मरण के पथ पर व्यवधान पड़ जाता है । क्लिष्ट कर्मों के साथ अक्लिष्ट और अक्लिष्ट कर्म संक्लिष्ट रहा करते हैं । वास्तव में ऐसा व्यक्ति हमारा सबसे बड़ा हितैषी तथा पूज्य होता है जिसके माध्यम से अथवा सानिध्य से हमारी इष्ट के प्रति प्रीति बढ़ती रहती है ।

तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जाते होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो ।।

इसलिए हमारा परम मित्र एवं प्राण से प्यारा वह व्यक्ति है जो हमें सद्गुरु के चरणों में लगाये रखे । हमें निरन्तर उसी प्रवाह में बहते रहने का माध्यम बनता रहे ।

ऐसे लोगों का सङ्ग मिलना ही सत्संग कहलाता है। भगवान किसको सुलभ होते हैं ? इसका उत्तर देते हुए गीता में भगवान श्रीकृष्ण बतलाते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ (गीता ८/१४)

अर्थात्, हे अर्जुन ! जो निरन्तर अनन्य चित्त होकर मेरा स्मरण करता है उस नित्ययुक्त योगी को मैं सुलभ हो जाता हूँ। भगवान का नित्य स्मरण बना रहे इसके लिये आवश्यक है कि साधक ध्यान योग का अभ्यास करें। ध्यान योग के द्वारा सतोगुण की वृद्धि की जाती है और सतोगुण के उदय होने पर ही भगवान का स्मरण रह सकता है और साधक अपने इष्ट प्रेम में आप्लावित रहता है। ध्यानयोग में ही भगवान के योगैश्वर्य का साक्षात्कार सम्भव है जिसकी अनुभूति होने पर अखण्ड निष्ठा बन जाती है—भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं—

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ (गीता १०/७)

मेरे ऐश्वर्य एवम् योग को जो तत्व से जान लेता है वह अविकम्प योग को प्राप्त हो जाता है। अविकम्प योग के पा लेने पर ही साधक को निरन्तर इष्ट का साक्षात्कार बना रहता है। अनन्य शरणागति-अनन्य निष्ठा इसी अवस्था में सम्भव हुआ करती है। ध्यान योग के निरन्तर अभ्यास से साधक भगवान में एकीभाव को प्राप्त हो जाता है। यही भक्ति एवं योग का चरम लक्ष्य है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधक को चाहिये येन केनादि प्रकारेण अपने इष्ट के स्मरण-प्रवाह को न टूटने दे। श्री गुरुदेव की करुणा कृपा से ही यह सम्भव है।

पहले योग्य बनें फिर कामना करें

★ ऐसे गुरु को खोज निकालना जो अपने शिष्य की भलाई के लिये सच्चाईपूर्वक प्रयत्नशील हों, इस संसार में बड़ा ही दुष्कर कार्य है, परन्तु ऐसे शिष्य को ढूँढ निकालना भी, जो सच्चाईपूर्वक गुरु के उपदेश के अनुसार चले, अत्यधिक कठिन कार्य है।

× × ×

★ आध्यात्मिक मार्ग बहुत-सी बाधाओं से भरा हुआ है। अतः वे गुरु जिन्होंने स्वयं उस मार्ग का अनुगमन किया है, साधकों का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं तथा उनके मार्ग से सभी प्रकार की कठिनाइयों एवम् बाधाओं को दूर कर सकते हैं। ऐसे गुरु से प्राप्त मन्त्र में रहस्यमयी शक्ति होती है।

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अपने मन पर दृष्टि डालो

※ श्री विष्णुप्रसाद व्यास (बीना)

"अन्तर्मुख वृत्ति वाला अपने ही अवगुण और दुर्बलताओं को दूर करने के लिये मन से लड़ता रहता है और अपना जीवन अमृतमय बना लेता है और बहिर्मुख वृत्ति वाला सर्वदा दूसरों की शिकायत ही करता रहता है और झगड़ों में अपना जीवन व्यर्थ गँवा देता है।"

श्री गुरुदेव कहते हैं कि "अन्तर्मुखी सदा सुखी" "बहिर्मुखी नित्य प्रति दुःखी।" हम क्योंकि सदा सुखी रहना चाहते हैं इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी वृत्ति को अन्तर्मुखी बनावें और दूसरों को देखने के स्थान पर अपने को ही देखें।

वे समझाते हैं कि यदि तुम सूक्ष्म मति वाले अर्थात् प्रतिभावान हो तो मन की श्वेत चादर पर काले-काले दाग धब्बे मत लगाओ अर्थात् दूसरों की चर्चा करने की अपेक्षा अपने मन की धारा को देखते रहो कि क्या वह शब्दमय अमृत का रस ले रही है या विषय विकारों के विष का पान करती है। यदि तुम्हारा मन विषय-विकारों की ओर दौड़ता रहता है तो उसे उधर से हटाकर सद्गुरुदेव के प्रदान किये हुए "नाम मन्त्र" में लगादो।

याद रखना कि मन ऐसा वैसा शत्रु नहीं है कि घण्टे दो घण्टे या एक दो दिन अथवा एक महिने या एक वर्ष में तुम्हारा कहना मानकर विषय-विकारों से रुक जायगा—इसको तो जन्म-जन्म की मैल लगी हुई है।

प्रायः मनुष्य थोड़ा-बहुत परिश्रम करके अपने काले मन को उज्ज्वल कर लेते हैं और समझने लगते हैं कि हमने उच्चावस्था प्राप्त करली।

साधक को मन रूपी रिपु से सदा सावधान रहना चाहिये क्योंकि यह मन मरकर भी जीवित हो जाता है। जैसे मरा हुआ मेंढक वर्षा पड़ने पर जी उठता है वैसे ही गन्दा मन भी विषय-विकारों को देखकर अन्तर्मुखता को त्याग कर बहिर्मुखी बन जाता है।

एक महात्मा तेल का दीपक जलाकर एक बिल्ली के सिर पर रखता था और उसी के सहारे कथा पढ़ा करता था। सब लोग कहते थे कि आश्चर्य है? बिल्ली भी किस तरह शान्त होकर कथा सुन रही है।

एक दिन एक सत्संगी चूहा पकड़ कर ले आया। आधी कथा हो चुकी थी। उसने चूहे को बिल्ली के सामने छोड़ दिया। ज्योंही बिल्ली ने उस चूहे को देखा एकदम उसके पीछे भागी—दीपक गिर कर बुझ गया। अन्धेरा छा गया। इसी प्रकार की दशा मन की है।

तात्पर्य यह है कि मन रूपी शत्रु जीवित है तो सब बैरी जीवित हैं। इसलिये गुरु महाराज जी ने हमें इस अपने मन से जोहा लेने का उपदेश दिया है क्योंकि यदि मन स्वच्छ है तो सब कुछ उज्ज्वल है यदि यह मलिन है तो सब कुछ मलिन है।

एक बार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने दुर्योधन और युधिष्ठिर से कहा कि कल प्रभात में अमुक स्थान पर जाना है। तुम दोनों को भी संग में चलेंगे। दुर्योधन तो स्नानादि करके शुभ्र वेष-भूषा धारण किये चन्दनादि का अनुलेपन लगाये वहाँ आ गया परन्तु युधिष्ठिर सामान्य वस्त्र पहनकर वहाँ आ उपस्थित हुए।

दोनों को साथ लेकर श्रीकृष्ण भगवान एक ग्राम के बाहर विद्यमान हो गये। युधिष्ठिर जी से भगवान बोले कि तुम इस ग्राम में जाकर कोई बुरा मनुष्य खोजकर ले आओ। उसके बाद दुर्योधन से कहा कि तुम इस गाँव में जाकर किसी भले मनुष्य को ले आओ। सायंकाल तक ग्राम में वे घूमते रहे परन्तु दोनों ही खाली लौट आये। युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण ने पूछा तुम अकेले ही वापस आ गये हो? क्या तुम्हें कोई दुर्जन मनुष्य नहीं मिला? युधिष्ठिर ने प्रत्युत्तर दिया कि महाराज! सचमुच ही मुझे बुरा कोई भी दिखाई नहीं दिया। इसलिये मैं किसी को भी साथ नहीं ला सका। अब भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन से लगे पूछने—कि तुम भी किसी सज्जन को साथ में नहीं लाये क्या कारण है? दुर्योधन ने उत्तर दिया कि मैंने सारे ग्राम की गली-गली छान डाली किन्तु मुझे कोई सुजन मिला ही नहीं, फिर मैं किसी को कैसे साथ लाता। जितने भी मैंने देखे सब पापी और दुष्ट ही प्रतीत हुए।

अब विचार करो कि वही ग्राम और वे ही मनुष्य। एक को तो कोई बुरा नजर नहीं आया और दूसरे को कोई भला नहीं दिखाई पड़ा। इससे प्रमाणित होता है कि "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।"

अपने ही मन की बुराई से हर जगह ही बुराई नजर आती है। परमार्थी मनुष्य को दूसरों की शिकायत करना छोड़कर अपने मन की ही जाँच-पड़ताल करनी चाहिये। इससे यह ज्ञात जायगा कि जितनी चञ्चलता थी वह सब अपने ही मन की थी! हम निरर्थक ही दूसरों को दोष देते हैं और उनसे रुष्ट होकर उन्हीं से घृणा करने लगते हैं। अपने चित्त में शत्रुता को पालकर दुःखी और व्याकुल होते हैं, यह सब अपने ही मन का अपराध है। श्री गुरु कृपा से जब अपना मन ही सन्मार्ग पर आ जाता है तो सर्वत्र भला ही भला नजर आने लगता है।

॥ दोहा ॥

बुरा जो देखन को चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

धन्य हैं हमारे सद्गुरुदेव जी, जिन्होंने हमारे मन के कोटे को बदलकर हमें दुःखी से सुखी बना दिया।

★ मन की चञ्चलता के दो कारण हैं—वासना और प्राण। इनमें से एक का नाश हो जाय तो दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। इनमें से मनुष्य प्रथम साधन प्राण को ही जय करे, इसके लिये तीन साधन हैं—परमित आहार, आसन और शक्ति चालन आवश्यक है। पेट का चतुर्थांश खाली रखते हुए घी तथा दूध से युक्त (सुस्निग्ध) मधुर ऐसा आहार करना चाहिये।

—ब्रह्म उपनिषद्

★★ योग द्वारा ही विश्व शान्ति सम्भव है ★★

❀ डा० विजय सिंह (गोरखपुर)

यह बात उन दिनों की है जब कुछ विदेशी पर्वतारोहियों ने हिमालय के उच्च बर्फानी शिखरों के ऊपर रेडियोधर्मिता से युक्त यन्त्र छोड़ दिये थे। जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप अखबारों में उसे लेकर गहन चिन्ताएँ व्यक्त की गई थीं और कहा गया था कि इसका प्रभाव उन शिखरों से प्रवाहित जलस्रोतों पर पड़ेगा जो अन्ततोगत्वा गंगा आदि नदियों के पवित्र जल को प्रदूषित करेंगी। जिसके फलस्वरूप स्नानादि प्रयोगों से लोगों में भयङ्कर रोग भी उत्पन्न होने की सम्भावना है। संसद में इसे लेकर हंगामा हुआ तथा सांसदों ने माँग की कि यन्त्र की खोज की जाये परन्तु सरकारी प्रयास के बावजूद भी उक्त रेडियोधर्मिता से युक्त उस यन्त्र की खोज न की जा सकी।

इस प्रसंग की चर्चा श्री सद्गुरुदेव भगवान के सम्मुख करते हुए किसी गुरुभाई ने कहा कि क्या हिमालय में रहने वाले योगियों को भी इससे कोई नुकसान हो सकता है?

इसी चर्चा के दौरान किसी अन्य गुरुभाई ने परमाणु बमों की विध्वंसक क्षमता का विवरण देते हुए कहा कि ऐसे-ऐसे परमाणु बम इतनी पर्याप्त संख्या में पाश्चात्य जगत ने बना रखे हैं कि संसार के समूल जीव जगत का विनाश अनेकों बार उनके प्रयोग से हो सकता है। किसी तीसरे गुरुभाई ने चर्चा का विस्तार करते हुए, विश्व में बढ़ रही अशान्ति, युद्ध विभीषिका, जिसमें अनगिनत लोग काल-कवलित हो रहे हैं, उन्होंने कहा कि जहाँ कुछ देश विपुल ऐश्वर्य का उपभोग कर रहे हैं वहीं कुछ देशों में अकाल से पीड़ित करोड़ों जनसंतति घास-पात के भी अभाव में मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। श्री सद्गुरु भगवान अपने स्वभावानुकूल मौन रहकर अपने बाल-गोपालों की वार्ता को सुनते रहे और जब सबकी इच्छा श्री प्रभु के मुख से अभय वचन सुनने की हुई तो श्री प्रभु जी ने कहा—लल्ला! यही कर्म विपाक है। जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मों के फल को अवश्य ही भोगता है। प्रकृति उसे बलात् नियोजित कर देती है उन फलों को भोगने के लिए। रही बात तुम्हारी योगियों के बारे में, सो लल्ला! हिमालय में ऐसे कालजयी भवसिद्ध हैं जिनका ब्राह्मी सृष्टि के प्रलय होने पर भी विनाश नहीं होता। उनका प्रकृति पर्यन्त विशेषाधिकार हुआ करता है, महा प्रलय में जब ब्राह्मी सृष्टि के सभी स्थूल सूक्ष्म में, सूक्ष्म कारण में विलोम क्रम से लय करते हुए पञ्च महाभूति भी अपने मूल कारण में लय हो जाते हैं, उस समय सभी लोकों का क्षय हो जाता है। ऐसा काल उपस्थित होने पर महासिद्ध ब्राह्मी सृष्टि को परित्याग कर जब जाने को उद्यत होते हैं तब उस समय प्रलय की मर्यादा को रखने के लिये अपनी जटाओं के एकाध बाल प्रलयाग्नि में होम कर देते हैं। लल्ला! योगियों की अचिंत्य शक्ति का आभास तुम्हें तब हो सकता है जब तुम अपने

को योगपरायण बना लो, यही बात विश्व में अशान्ति की, इसका सभी निराकरण हो सकता है, जब संसार के अधिकांश स्त्री-पुरुष अपने को योग-मार्ग में प्रतिष्ठित कर लें, जिससे समष्टि में सत्व भाव का विकास हो। भूतों में दया का भाव जब व्याप्त होगा तब अभयत्व, अलोलुप्तव संचार विश्वजनीय समाज में हो सकेगा। जिससे स्थिर शान्ति समाज में क्रमशः दृष्टिगोचर होगी।

अन्य किसी गुरुभाई ने यह देखकर कि श्री प्रभु जी उस रेडियोधर्मी यन्त्र के हिमालय पर खो जाने के बावत् कुछ भी नहीं कह रहे हैं तो उन्होंने अति विनयपूर्वक कहा—प्रभो! उस यन्त्र से क्या भविष्य में सचमुच कोई हानि होने वाली है? श्री प्रभु जी बोले—लल्ला! ऐसा कुछ नहीं होने वाला है, तुम सभी निश्चिन्त रहो। वे आनन्द-कन्द प्रभुजी, महाप्रभुजी से सृष्टि का क्या अज्ञात है।

शान्ति के प्रसंग में एक और रोचक घटना का मन में स्फुरण हो रहा है। एक अपने अति सम्पन्न कई कल कारखानों के मालिक गुरुभाई श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में विनयवत बैठे हुए चरण सेवा करते हुए बोले—प्रभो! मन में शान्ति नहीं है। प्रभो! मुझ पर कृपा करें। श्री प्रभुजी विनोदभाव से अति गम्भीर होकर बोले—लल्ला! तुम्हारा कारोबार ठीक-ठाक चल रहा है न। कल कारखानों से ससुचित लाभ तो मिल रहा है। भाईजी ने कहा—प्रभो! आपकी अत्यन्त कृपा है धन-सम्पत्ति सब बढ़ोतरी पर है, परन्तु मुझे शान्ति चाहिए। अब तो आप कृपाकर मुझे शान्ति देवें। श्री सद्गुरु भगवान उसी गम्भीरता से किसी ब्रह्मचारी को आदेश देते हुए बोले—लल्ला! देखो आश्रम में कितनी शान्तियाँ हैं एक को बुलालाओ। इस विनोद वचन को सुनकर समागत सभी लोग हँस पड़े। वे गुरुभाई भी श्री प्रभुजी के विनोद को समझकर हँसने लगे बात आई और गई।

उपरोक्त घटना से मेरे मन में एक विचार उठा कि सर्वसमर्थ श्री सद्गुरु जी ने अपनी कृपामय अमृत वर्षा से उस आर्त गुरुभाई पर क्यों नहीं कृपा की, अपितु सारे प्रकरण को ही सहज हास्य में टाल गये।

दूसरे दिन की बात है प्रातः आरती-पूजन के पश्चात् गीता के ग्यारवें-बारहवें अध्याय के पाठ के बाद संक्षिप्त प्रवचन करते हुए श्री प्रभुजी ने पिछले दिन उठे मेरे मन के संशय का निवारण अहैतुकी कृपा से किया। जगदात्मा अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण के शक्तिपात से समर्थ हुआ दिव्य दृष्टि सम्पन्न अर्जुन प्रभु के विराट स्वरूप को प्रत्यक्ष देखकर भयभीत हो उठा, उनके ऐश्वर्य एवं तेज का वह संवहन न कर सका। आगे चलकर प्रकृतिस्थ होने पर अर्जुन गुरु रूप श्रीकृष्ण से पूछता है कि आपके अव्यक्त अथवा व्यक्त रूप में किसकी उपासना करना जीव के लिए सहज है। भगवान ने उसे स्पष्ट निर्देश दिया—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम
व्यक्तासक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं
देहवद्भिरवाप्यते ॥
(गीता १२/५)

अर्थात् अव्यक्त से व्यक्त की उपासना सहज है। जगदात्मा ने स्वयं की प्राप्ति हेतु अनेक उपाय अर्जुन को बतलाए जैसा कि—

अनन्येनैव योगेन मां
ध्यायन्त उपासते ।
(गीता १२/६)

अथवा

मय्येव मन आधत्स्व
मयि बुद्धि निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत
ऊर्ध्वं न संशयः ॥
(गीता १२/८)

यदि ऐसा करने में समर्थ नहीं हो तो हे धनञ्जय !—

अभ्यासयोगेन ततो
मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ।
(गीता १२/९)

अगर अभ्यास करने में भी असमर्थ हो तो—

सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरुयतात्मवान् ।
(गीता १२/११)

और इन साधनों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर साधन कौन-सा है और उसका फल क्या है और इन सबका निचोड़—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासा-
ज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफल-
त्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥
(गीता १२/१२)

अर्थात्, अभ्यास व ध्यान से ज्ञान श्रेयस्कर है, तथा ध्यान से कर्मफल त्याग श्रेष्ठतर है क्योंकि त्याग से नैरन्तर शान्ति की उपलब्धि होती है। चिरशान्ति जीव को आत्म प्रतिष्ठित होने पर ही प्राप्त होती है, इससे पूर्व नहीं। योग साधन करते-करते जब साधक को प्रकृति और पुरुष की गाँठ की पहचान हो जाती है जिसे चिद्जड़ ग्रन्थि कहते हैं इसका निवारण हो जाने से प्रकृति से पुरुष का बोध अलग हो उठता है तथा प्रकृति का स्वयमेव त्याग हो जाता है। केवलि भाव में प्रतिष्ठित योगी को ही परम-विश्रान्ति का लाभ होता है ऐसा समझाते हुए श्री प्रभुजी ने "त्यागात् शान्तिरनन्तरम्" कई बार आह्लादित होकर बोलते हुए एक बार अचानक मुझ अधम की ओर दृष्टि निक्षेप की।

मुझे अचानक विगत दिन के मन के संशय का समाधान मिल गया। शान्ति-साधना की चरमोपलब्धि है। इसके हेतु सद्गुरु रूप, जगत्गुरु भगवान श्रीकृष्ण के बतलाये किसी न किसी उपाय को जीवन में गहराई से उतारना होगा। वे कृपालु श्री प्रभुजी हम सभी को इस महत् उपलब्धि हेतु वैसा साहस एवम् श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर सकने की क्षमता प्रदान करेंगे।

सन्तों की वाणी में—

सोऽहम् जप का रहस्य

❀ संकलनकर्त्ता—श्री आर० सी ठाकुर
२०२/६ जे० के० कालोनी, कानपुर-२०८०१०

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

परम सन्त कबीर जी कहते हैं—"सोऽहम् अजपाजाप, छूटे पुण्य और पाप"।

महान् सन्त ज्ञानेश्वर का कथन है—जिस प्रकार प्रतिबिम्ब से लेकर बिम्ब तक प्रभा सर्वत्र फैली है, उसी प्रकार सोऽहम् वृत्ति भी जीवात्मा से लेकर परमात्मा तक पहुँची हुई है तभी परमात्म तत्व में लीनता आती है।

महाराष्ट्र के एकनाथ सन्त महाराज कहते हैं—अहंकार रूपी देहाभिमान को छोड़कर सोऽहम् ऐसा आत्माभिमान धारण करने से चित्त में चैतन्यघन परमात्मा प्रकट होते हैं, मन सर्व संकल्प-विकल्पों को त्यागकर परम उन्मन अवस्था को पा लेता है, बुद्धि में पूर्ण ब्रह्म निश्चय हो जाता है।

आदि गुरु शंकराचार्य ने सदाचार नाम के ग्रन्थ में इस मन्त्र का महत्व इस प्रकार बतलाया है—

सर्वेषु प्राणिनां देहे, जपो भवति सर्वदा।
हंस सोहमिति ज्ञात्वा, सर्वबन्धैः प्रमुच्यते॥

अर्थात् सर्व प्राणियों की देह में यह जप सतत होता रहता है। मानव हंस को सोऽहम् रूप से जानकर सर्व बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

सन्त नामदेव कहते हैं—

नामा म्हणे मना, होई राम रूप।
अखण्डीत जप सोऽहम् सोऽहम्॥

अर्थात् मन तभी रामरूप होगा जब साधक सोऽहम् सोऽहम् का नित्य प्रति अभ्यास करेगा। ब्रह्म विद्या उपनिषद् में हंस मन्त्र की महिमा बताते हुए कहा गया है—

प्राणिनां देह मध्ये तु, स्थितो हंसः सदाच्युतः।
हंस एव परं सत्यम्, हंस एव तु शक्ति कम्॥
हंस एव परं वाक्यं, हंस एव तु वैदिकम्।
हंस एव परो रुद्रो, हंस एव परात्मकम्॥

सर्व देवस्य मध्यस्थो, हंस एव महेश्वरः ।
पृथिव्यादि शिवान्तं, तु आकाश द्याश्चवर्णकाः ।।
कूटान्ता हंस एव, स्यान्मातृकेति व्यवस्थिताः ।
मातृ का रहितं मन्त्र, मा विश्यन्ते न कुत्रचित् ।।

प्राणियों के देह के मध्य में अच्युत रूप हंस सदैव स्थित रहता है। हंस ही परम सत्य है। हंस ही शक्तिस्वरूप है। हंस ही महावाक्य है। हंस ही समस्त वेदों का सार है। हंस ही महारुद्र है। हंस ही परब्रह्म परमात्मा है। सब देवताओं के मध्य में हंस ही महेश्वर है। पृथ्वी, जल आदि से लेकर शिव पर्यन्त ३६ तत्व और अ से लेकर श तक वर्ण तथा कूटस्थ वर्ण हंस ही है। इन सब वर्णों में मातृका रूप से हंस ही स्थित है। मातृका रहित मन्त्र का कहीं भी उपदेश नहीं किया जाता। अतः सभी वर्ण हंस रूप ही हैं।

इस प्रकार सभी ग्रन्थों ने सभी सन्तों ने इस अनादि जप की स्तुति गायी है, यही गुरुमुखी मन्त्र है, यही अजपा गायत्री है, यही नादानुसन्धान अथवा अनहत नाद है। सभी प्राणिमात्र का मूलमन्त्र है जिसे प्राणी निरन्तर जाने-अनजाने में अपने श्वास-प्रश्वास में जप रहा है।

सोऽहम् एवम् हंस में क्या भेद है ?

१. मन्त्र साधन से पूर्व हंस रूप से इसकी गति बायीं नाड़ी इड़ा और दायीं नाड़ी पिंगला में होती है।
२. हंस प्राण की विषमता युक्त गति है, और सोऽहम् सम गति है।
३. हंस अज्ञान युक्त वर्णावस्था है, सोऽहम् ज्ञानयुक्त मन्त्रावस्था है।
४. हंस जप के अधिकारी सभी प्राणी हैं, जबकि सोऽहम् जपने का अधिकारी केवल मानव है।
५. मन्त्र दीक्षा से पूर्व श्वास की क्रिया हंस रूप से ध्वनि करती है उसी को मानव सोऽहम् रूप से जपकर सिद्ध करता है।
६. जीव जो अनजाने में श्वास प्रक्रिया में हंस-हंस ध्वनित कर रहा है वही गुरु कृपा से सोऽहम्-सोऽहम् जपना शुरू कर देता है और मन्त्र योग के माध्यम से हंस सोऽहम् में परिवर्तित हो जाता है। तब इसे अस्मितानुगत समाधि कहते हैं।
७. जीव जब गर्भ में होता है तभी भगवान उसको सोऽहम् मन्त्र की दीक्षा दे देते हैं। गर्भ में जीव को सातवें महीने में स्मृति ज्ञान होता है। उसे अपने किये कर्मों का पश्चाताप होता है और प्रार्थना करता है। भगवान उसे यही मन्त्र देते हैं परन्तु बाहर दुनियाँ में आकर वह भूलकर सोऽहम् का कोऽहम् करने लगता है।
८. हंस प्राण के आश्रित रहता है और प्राण नाड़ीपुञ्ज के आश्रित रहता है। हंस मोक्ष दायिनी विद्या है। हंस सार्वभौम एवं महाशक्तिशाली होने पर मानव में उसके अनुरूप रहती है। हंस विद्या से जागने के बाद यह क्रियाशील होकर शरीर को संगठित करती है।

९. कोई मन्त्र मातृका रहित नहीं होता, षट्चक्रों में भी मूलाधार में डाकिनी स्वधिष्ठान में राकिनी मणि पूरक में लाकिनी, अनाहत में काकिनी विशुद्धमे शाकिनी आज्ञा में हाकिनी तथा सहस्रार में महाशक्ति मातृका रूप में देवी शक्तियां विराजमान हैं। मानव हंस को गुरु से सोऽहम् रूप से जानकर बन्धन मुक्त हो जाता है। हंस का सोऽहम् रूप में संशोधन और अनुसंधान है। यही मन्त्र साधना है और वस्तुतः हंस पद ही शिवशक्तियुक्त है।

१०. प्राण सो कहकर अन्दर जाता है ऽहम् कहकर बाहर आता है। जाते-आते एक पूर्ण जप हो जाता है। इसी प्रकार 'ह' में प्राण अन्दर और 'स' में बाहर। कुछ काल के लिए प्राण अन्दर ठहर जाता है और ठहरा हुआ प्राण ही अपान बनकर बाहर आता है। आते समय सो को भीतर छोड़ देता है और आन्तरिक क्रिया से ऽहम् भावना धारण करता है। अतः प्राण ही क्रियाभेद से अपना बन जाता है। वस्तुतः सो ही ऽहम् है और ऽहम् ही सो है। प्राण ही अपान है और अपान ही प्राण है। हंस में पहले ह की ध्वनि उठती है बाद में स: की। सोऽहम् में पहले सो की ध्वनि को प्राण की श्वास क्रिया के साथ मिश्रण किया जाता है तत्पश्चात् प्रश्वास के साथ ऽहम् की ध्वनि होती है। वर्णों की ध्वनि का क्रम उलट जाने के कारण यह उलटा जप बन जाता है। जैसे-जैसे मन्त्र अन्दर पहले मन में फिर बुद्धि में उतरने लगता है, गति सम होने लगती है और मानव अन्तर मुख होने लगता है। श्वास की गति धीमी होने के साथ-साथ प्रश्वास की दूरी भी कम होने लगती है। श्वास की यही मन्द गति बाह्य वृत्तियों को अन्दर ले जाने लगती है। प्राणों की बहिर्मुख गति को अन्तरमुख करना ही मन्त्र साधना है।

सोऽहम् मन्त्र का प्रभाव क्या है ?

सोऽहम् दिव्य मन्त्र है, प्राणीमात्र का मूलमन्त्र है। यह किसी सम्प्रदाय का मन्त्र नहीं बल्कि प्राणी के साथ अजपाजप गायत्री के रूप में श्वास-प्रश्वास में ध्वनित होने वाला मन्त्र है। सोऽहम् सञ्जीवनी बूटी है, साधकों को लौकिक पारलौकिक लाभ प्रदान करने वाला मन्त्र है। यह सहज प्राणायाम है, स्वाभाविक ध्यान है। सिद्ध मार्ग है, मुक्ति का सोपान है, विजय की पताका है, भवसागर पार करने की नौका है, यह भगवान की आराधना युक्त स्फूर्ति मन्त्र है। अपने अन्तरात्मा का अभेद रूप से अनुसन्धान करने की इसमें क्षमता है और परमेश्वर में तादात्म्य करके आत्मसमर्पण करके आत्मैक्य कर देता है, अभेद की अनुभूति करा देता है। चित्त की तन्मय दशा कर देता है।

यह वर्णाक्षरों का अर्थ अनुभव करा देता है, शिव स्वरूप होने की अनुभूति करा देता है। वर्णों की शक्ति स्वरूपा एवं देवता का शिव एवं शक्ति में लीन करा देता है। सोऽहम् मन्त्र शक्ति का स्पन्दन प्राणों के साथ मिलकर करा देता है। समाधि प्राप्त करा देने वाला उच्च साधन है। यह गुरुप्रसाद से जाना जाता है। परम सोऽहम् के अनुभव से मानव नर से नारायण साधारण से परमहंस बन जाता है। सो और ऽहम् एक होकर स्थिर हो जाता है वही प्राणापान की समगति या कुम्भक या समाधि है। यह मन्त्र जीव से शिव,

व्यष्टि से समष्टि, प्रकृति से पुरुष बनाने की सामर्थ्य रखता है। इन्द्रियों से विस्मृति शरीर भाव से निवृति कराने का यह अचूक रामबाण है। इस मन्त्र के माध्यम से विशुद्ध आत्मा को पञ्चकोषों के आवरणों से ऐसे पृथक किया जा सकता है जैसे चावल को उसके आच्छादित करने वाले छिलके से। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि के कार्यों को सम्पादन एवं नियन्त्रण रखना अर्थात् साक्षी रूप में प्रतिष्ठित करना भी इसी अजपाजप से सम्भव है। जीव का ज्ञाता एवं द्रष्टा होने का भाव नष्ट करना जड़, चेतन, जीवात्मा, परमात्मा, प्रकृति पुरुष, क्षेत्रज्ञ क्षेत्री के द्वैत भाव समाप्त करना, मैं और मेरा के अज्ञान को मिटाकर उस निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, निर्विकल्प, निरञ्जन, निर्विकार, नित्यमुक्त निर्मल में लीन होने की स्थिरता प्राप्त करना इस मन्त्र की उपादेयता है।

मन्त्र शक्ति के प्रभाव अनगिनत हैं जिसको सर्वसमर्थ गुरुदेव बैखरी वाणी का आश्रय लेकर अपनी शक्तिपात रूपणी कृपा से मलावरणों को भेदकर साधकों में चैतन्य भाव का विकास करते हैं। मन्त्र, मन्त्री, मन्त्र देवता का आराधक के चित्त में एकाकार स्फुरण होना ही मन्त्र सिद्धि का उपाय है। यही मन्त्र जपने का महा रहस्य है। गुरुदेव के आदेशानुसार नित्य प्रातः स्नान करके जपने से मन्त्र बड़ा परिणामकारी सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्र को बिना स्नान किये भी खाते-पीते, उठते-बैठते भी जपा जा सकता है। क्या सोऽहम् जाप महावाक्य एवम् ब्रह्म की अनुभूति करा सकता है? हाँ ये महावाक्य आदि काल से ४ हैं—(१) तत्वमसि, (२) अयमात्मा ब्रह्म, (३) प्रज्ञानं ब्रह्म, (४) अहंब्रह्मास्मि।

उपरोक्त महावाक्य केवल सूत्र मात्र नहीं हैं, वे असाधारण कुञ्जियाँ हैं जो हमारे लिये वाणी, बुद्धि की पहुँच से परे हैं जो वास्तविक तत्व की परिपूर्णता की भूमि में प्रवेश करा देते है, ये महावाक्य जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता ही सूचित करता है एक ही नित्य तत्व का भान करा देता है। आठवीं और नवीं सदी के प्रारम्भ में दस नामी सन्त प्रणाली का पुनर्गठन करके आदि गुरु शंकराचार्य ने इन्हीं महावाक्यों के आधार पर पुनः ज्ञान उपार्जन एवम् साधकों के लिए चार मठों की स्थापना करके इस प्रकार पुनः व्यवस्थित किया—

(१) दक्षिण में शृंगेरी मठ, यजुर्वेद मान्य सिद्धान्त अहंब्रह्मास्मि।
(२) पूर्व में जगन्नाथपुरी (गोवर्धन), ऋग्वेद मान्य सिद्धान्त प्रज्ञानंब्रह्म।
(३) उत्तर में जोशी मठ (ज्योतिर), अथर्ववेद मान्य सिद्धान्त अयमात्मा ब्रह्म।
(४) पश्चिम में द्वारका (शारदा), सामवेद मान्य सिद्धान्त तत्व मसि।

इन सभी सिद्धान्तों में व्यक्तित्व तथा अहङ्कार का कोई स्थान नहीं। अहं ब्रह्म, अहं शिव, शिवोऽहम् सोऽहम् ही है द्वैत कुछ नहीं है। संसार मुझ से पृथक कोई वस्तु नहीं। समस्त वस्तुएँ चित्त भ्रम की उत्पत्ति मात्र हैं जैसे वे रूप निःस्सार होते हैं जिनका निर्माण दर्पण के प्रतिबिम्ब परावर्तन द्वारा होता है। उसी प्रकार विश्व ब्रह्माण्ड जो दर्पण के रूप के समान नाशवान है।

प्रलय तथा महाप्रलय में तभी जितना सक्रिय काल होता है उतना ही अवधि का अक्रिय काल भी। उन दोनों स्थितियों में केवल आदिकाल परमात्मा सत्ता ही तो एक

सनातन रूप में रहती है। उसी एक तत्व में एकाकार होने में शरीरी को, शरीर का कोई ध्यान नहीं रहता और न शरीर के अङ्ग विशेष का ही कोई महत्व। मैं शरीर नहीं तो मेरा जीवन या मरण कैसे हो सकता है? मैं जीवन नहीं तो मुझे भूख या प्यास कैसे लगसकती है? मैं हृदय नहीं तो मुझे शोक या मूर्छा का अनुभव कैसे हो सकता है? मैं कर्मशील नहीं तो बन्धन या मोक्ष का विषय कैसे हो सकता है? सोऽहम् वही मैं हूँ। ये चारों महावाक्य यही अनुभूति प्रदर्शित करते हैं कि—

मैं सत्ताहीन हूँ मैं अपने को सत्‌चित्त आनन्द में व्यक्त करता हूँ। मैं अरूप हूँ, अमृत्य हूँ, मैं अपने को हंस रूप में अथवा ब्रह्म रूप में व्याप्त करता हूँ, मैं वह मैं हूँ जो पूर्ण अर्थात् ब्रह्म है, शिव है। मैं विशुद्ध चेतना हूँ, आत्म क्रीड़ा में रत आत्मा हूँ। मैं आदिअन्त आनन्द हूँ, मैं अपने को अपने ही द्वारा प्रकट करता हूँ, मैं अनाम हूँ, अरूप हूँ, चेतना में ज्ञात हूँ।

मैं विकास से परे हूँ, कर्म से परे हूँ, सर्वात्मा हूँ, आनन्द हूँ, मैं वह मैं हूँ जो हंस रूप में विराजमान है। सोऽहम् रूप में मैं वही हूँ, मुझसे पृथक कुछ नहीं, मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही शिव हूँ, मैं ही राम हूँ, मैं ही कृष्ण हूँ, मैं वह मैं हूँ जो आत्मा है जिसको न कोई शास्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है, न वायु सोख सकती है, जो नित्य है, सनातन है। यही योग भाषा में सम्प्रज्ञात योग की चौथी श्रेणी है, जिसको अस्मितानुगत समाधि कहते हैं, इसमें अस्मि प्रत्यय होता है। इस समाधि के पश्चात् योगी का पतन नहीं होता। जो सिद्धों की कृपा से यदि सहज प्राणायाम, सहज ध्यान और सहज समाधि हो जाय तो इसमें आश्चर्य क्यों और कैसा?

क्या सोऽहम् जप से षट्चक्र-भेदन अथवा कुण्डलिनी-जागरण सम्भव है?

जी हां? मूलाधार के तह में गुदा द्वार से दो अंगुल ऊपर मेरुदण्ड के तले चार दल कमल है जिसका गणेश देवता तथा डाकिनी देवी अधिष्ठात्री देवी रूप में है, प्रजनन शक्ति के बीज वीर्य का आधार यही है, एक त्रिकोण स्थान में छोटे-से सर्पाकार में कुण्डलिनी साढ़े तीन घेरे लगाये सुषम्ना के निचले द्वार में बैठी है। इसको जागृत करना ही राजयोग का मुख्य उद्देश्य है। परन्तु सिद्ध कृपा से शक्तिपात द्वारा भी यह कार्य सर्वसमर्थ गुरुदेव द्वारा अधिकारी शिष्यों को सहज ही में हो जाता है। कुण्डलिनी जागृत करने के लिये कुम्भक लगाकर प्राण वायु के बल से उस पर आघात करना होता है। यह आघात सोऽहम् जप से सम्भव है। सुषम्ना नलिका के अन्दर ही ब्रह्म नाड़ी के बीच में बायीं ओर वज्रा और दायीं ओर चित्रा नाड़ियां भी हैं जिनमें प्राण की गति होने पर भिन्न-भिन्न अनुभव साधक को होते हैं। मलाक्रान्त होने तथा तमोगुण से प्रभावित होने के कारण से चक्र साधारण तया नहीं दीखते हैं। तमोगुण के नष्ट हो जाने से ही आन्तरिक सर्वदर्शन सम्भव है, प्रकाश पाकर ही ये चक्र भावना के कारण कमलाकार दीखते हैं। तीव्र संवेग वाले साधकों की सुषम्ना स्थित विभिन्न गांठें प्राण के विशेष वेग से खुल जाती हैं।

चन्द्र और सूर्य (इडा और पिंगला) की गति देह में शक्ति संचार करती है और अवशिष्ट शक्ति सुषम्ना के अन्तर्गत विभिन्न चक्रों में अर्थात् स्नायु केन्द्रों में सञ्चित रहती

है। योगी अन्तर दर्शन कर लेते हैं। इडा पिंगला की गति को एक नया रास्ता दिखा देना आवश्यक है अर्थात् सुषम्ना का मुँह खोलकर मेरुदण्ड की नलिका में से सहस्रार तक कुण्डलिनी शक्ति के लिये पथ बनाना ही तो मन्त्रों का सार है, उद्देश्य है।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज के अनुसार कुण्डलिनी जागरण के उनके अनुभव कुछ इस प्रकार हैं—

धनुर्धर आसन की उष्णता कुण्डलिनी शक्ति जागृत करती है। जैसे कोई नागिन का सपोला कुंकुम में नहाकर सिण्डी मारकर सोया हो। साढ़े तीन सिण्डी मारकर मुँह नीचे किये सर्पिणी-सी सोई रहती है। विद्युत का बना कंकण अथवा अग्नि की ज्वालाओं की चुरी पर घोंटे हुए सोने के पासे की सी उसम बँधी हुई और कसी हुई जो दबी-सी रहती है। वज्रासन के दबाव से इस तरह जाग जाती है मानो कोई नक्षत्र उमड़ पड़ा हो, अथवा सूर्य का आसन टूट गया हो, अथवा चारों ओर तेज के बीज के अंकुर फूट निकल रहे हों। कौतुहल पूर्ण ढङ्ग से वह शक्ति सिण्डी को छोड़ गतिशील होकर इतनी शीघ्रता से ऊपर उठती है कि नाभि स्थानमें दिखाई देती है। पहले ही से वह इतनी भूखी होती है कि आवेशित होकर हृदय के नीचे मुँह की ज्वाला फैलाकर मांस के कौर खाने लगती है। जो स्थान कोमल मिलते हैं उसके कौर बन जाते हैं। हृदय में भी दो कौर भर लेती है। फिर सलवों और हथेलियों को भी नहीं छोड़ती, भेद देती है। इस प्रकार शरीर के अन्दर हर एक अवयव की गाँठों को खोज निकालती है, अधोभाग भी नहीं छोड़ती, नख तक का सत्व निकाल लेती है। त्वचा को धोकर हड्डी के ढांचे से जोड़ देती है। हड्डियों की नलिकाओं के अन्दर का रस सोख लेती है। समस्त नसों के जाले धो डालती है, पारसी कुण्डलिनी सप्त धातुओं के समुद्र के घूंट पी डालती है और शरीर का प्रत्येक भाग सुन्न हो जाता है। नाक के छेदों से जो हवा या प्राण बाहर निकलकर १२ अंगुल तक जाती है, उसे पीछे हटाकर फिर भीतर घुसा देती है। तब नीचे की वायु ऊपर चढ़ती है और ऊपर की वायु नीचे उतरती है, मानो कुण्डलिनी कहती हो 'बस' जाओ अब तुम्हारा कार्य पूरा हो गया है। तुम्हारा अब यहाँ क्या काम ?

इस प्रकार अति तीव्र संवेग के योगेश्वर श्री ज्ञानेश्वर महाराज के अनुभव इसी महान् सिद्ध विद्या हंस, महाविज्ञान अथवा सोऽहम् जप को होती है। और जो हिमालय में सैकड़ों वर्षों से महायोगी समाधिस्थ हैं, जो महासिद्धों के रूप में विभिन्न काया बनाकर प्राणी मात्र का कल्याण कर रहे हैं, जो प्रकृति से भी ऊपर उठे हुए सिद्ध सम्पन्न हैं या बने हुए हैं, यह सब इन्हीं मन्त्रों के जपने का ही तो फल है।

एक घटना—कानपुर में अग्रसेन व्यायामशाला में घटित एक घटना जो गुरुदेव जी की पुस्तक 'योग सिद्धान्त' भाग २, पेज नं० १०७ में दी हुई है जिसमें मन्त्रों के प्रभाव से एक पुरुष का अस्थि पञ्जर जीवित हो उठा, यह क्रिया दो बार दोहराई गई। जीवित मनुष्य ने वह सब परिस्थितियां बतायीं जिनके अन्तर्गत उसकी मृत्यु हुई। वह कुछ दिनों तक जीवित भी रहा। जब तान्त्रिक मन्त्रों का इतना प्रभाव है तो आध्यात्मिक या वेद मन्त्रों से कुछ भी सम्भव हो सकता है। यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड की रचना, विलय, अवतारों का अवतरण भी होता है।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।

अर्थात् मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योग शक्ति के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूं।

षट्चक्र-भेदन के बिना भी क्या आत्मबोध, आत्मदर्शन सम्भव है ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान किये और विराट विश्वरूप दर्शन कराया और इस विराट रूप के एक करने में स्थित विश्व ब्रह्माण्ड की स्थिति भी दर्शायी, रुद्रों को, बारह आदित्यों को, वसुओं को, अश्वनी कुमारों को, पितरों, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, राक्षस एवं सिद्धों के समुदाय को तथा महाभारत में लड़ने वाले महान पराक्रमी योद्धाओं आदि-आदि को भी दिखाया ही होगा। जिससे वह बड़ा भयभीत भी हुआ और भगवान के माधुर्य सौन्दर्य गुण, प्रभाव तथा योग ऐश्वर्य की अनुभूति भी उसको हुई। परन्तु जहाँ गुण, प्रभाव, एवं ऐश्वर्य को लक्षित कर कोई भक्त भगवान के शरण होता है वह वास्तविक रूप से भगवान के शरण नहीं होता बल्कि गुण, प्रभाव आदि के शरण होता है। अर्थात् पूर्ण रूप से ११वें अध्याय में कही हुई बातों से संशय दूर नहीं हुआ असमञ्जसता बनी रही। इसलिये गीता के १२वें अध्याय के ९वें श्लोक में भगवान यह सन्देश देते हैं—

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ (गीता १२/९)

यदि तू मन को मुझ में अचल स्थापन करने के लिये समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन ! अभ्यास रूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त होने के लिये इच्छा कर। आगे उनका यह निर्देश है–

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ (गीता १२/१०)

यदि तू उपयुक्त अभ्यास से भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करने के परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्ति कर ही लेगा और आगे भगवान साधनों की कठिनाई में थोड़ी ढील देते हुए कहते हैं—

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ (गीता १२/११)

अर्थात् मेरी प्राप्ति रूप योग के आश्रित होकर उपयुक्त साधन को करने में भी असमर्थ है तो मन बुद्धि आदि पर विजय प्राप्ति करने वाला होकर सब कर्मों के फल को त्याग कर। यदि यह भी नहीं हो सकता तो—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ (गीता १८-६५)

हे अर्जुन तू मुझ में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा यह तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

सर्वाधार, सर्वेश, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तरयामी एवं सर्वव्यापी को ही निश्चल भाव से स्मरण करना तथा क्षण भर भी विस्मृति न सह सकना, उनके ही आश्रय रहकर उनके ही अधीन रहना, सब कार्य उनके ही लिए करने से तेरा इस संसार में रहकर जीवन सफल होकर अन्त में मुझ में ही लीन होगा। और आगे भगवान निर्देश देते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। (गीता १८/६६)

सम्पूर्ण धर्मों अर्थात् कर्त्तव्य कर्मों को मुझमें त्याग कर तू केवल एक मुझ शक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आजा।

यहाँ सम्पूर्ण धर्मों को त्यागने का अर्थ कर्त्तव्य कर्मों को ईश्वर के हवाले करना तो है ही, साथ-साथ यह भी है कि विभिन्न उपासना की रहस्यपूर्ण पद्धतियों, कर्मकाण्डों की अपूर्णता व विभिन्नता, आत्ममुक्त करने वाले दर्शनशास्त्रों के साधन वेदों के ज्ञानगम्य विषय, राजयोग, हठयोग आदि योगों के जटिल साधना तथा मतमतान्तर के विभिन्न चक्कर, इस सब में भ्रमित न होकर समस्त कर्मों को भगवान में समर्पण कर तथा सब कुछ भगवान का समझकर किसी के कर्मों के फल रूप समस्त भोगों में आसक्ति, ममता, अभिमान एवम् कामना का सर्वथा त्याग करके जिस स्थिति में भगवान रखें, कठपुतली की भाँति वैसे ही रहना। भगवान को ही अपना अनन्य हितैषी समझते हुए प्रेम से उन्हीं का चिन्तन करते रहने से सन्तोष को प्राप्ति होते हुए उत्कृष्ट भक्ति होगी। इसके लिये निरन्तर नाम अथवा मन्त्रों का जप इस कलयुग में अति उत्तम बताया है जिससे अनायास ही उत्तम कैवल्य पद तक की प्राप्ति सम्भव है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसको रामचरित मानस में एक चौपाई के माध्यम से उद्घोषित किया—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद, सन्त पुरान निगम आगमाही।
राम भजत सोई मुकुति गोसाई, अनइच्छित आवहि बरि आई॥

(रामचरित मानस)

सन्त, पुराण, वेद और शास्त्र सब यह कहते हैं कि कैवल्य रूप परम पद अत्यन्त दुर्लभ है किन्तु हे गोसाईं! वही अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति श्री रामजी को भजने से बिना इच्छा किये जबर्दस्ती आ जाती है। अर्थात् सोऽहम् वृत्ति के आने से अनेकों प्रकार के धर्म, कर्म, व्रत, दान, यज्ञ तथा अनेकों संयम के बिना ही इस परम पद की प्राप्ति सहज ही में सुलभ हो जाया करती है।

मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पञ्चम भजन सो वेद प्रकासा॥

कहकर भी नवधा भक्ति में से एक पूर्ण भक्ति बतलाई गई है।

ईश्वर की माया बड़ी दुस्तर है?—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता ७/१४)

यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है, परन्तु

जो पुरुष केवल मुझको निरन्तर भजते हैं वे इस माया का उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं।

उस परम पद की प्राप्ति कैसे हो ?

सिद्धों की कृपा से आत्मा की अनुभूति सरलता से हो जाती है हमारे ग्रन्थों का कथन योगशिखोपनिषद् के अनुसार इस प्रकार है—

नाना मार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्य परमं पदम ।
सिद्धि मार्गेण लभते नान्यथा पद्म सम्भव ॥ (१/३)

अर्थात् जो कैवल्य रूप परम पद विविध मार्गों से कठिनाइयों के पश्चात् मिलता है वह सिद्ध कृपा से सहज में ही प्राप्त हो जाता है। तो अवश्य ही ऐसे सिद्ध गुरु की खोज की जानी चाहिए। गुरु भी हो तो कैसा हो, और कैसे पहचाना जाय ? क्योंकि समस्त साधनों में से गुरुकृपा ही प्रधान साधन है। सत्संग करने से, सन्तों के पास जाने से, और स्वयं अनुभूति करने से सद्गुरु की पहिचान हो जाती है। जिसके पास जाने से प्रेम उमड़ पड़े, हृदय गद्गद हो जाय, मन की व्यथा दूर होने लगे, दिव्य अनुभूति अन्दर होने लगे, शक्ति का अनुभव होने लगे, दैवी गुणों की धारा बहने लगे, मन, बुद्धि पावन होने लगे, आनन्द आने लगे, सुख की प्राप्ति होने लगे, इसके अतिरिक्त जो शापों से, तापों से रक्षा करने का सामर्थ्य रखता हो, जिसमें शक्तिपात करके अन्तर शक्ति जागृत करने की क्षमता हो, जो आत्ममस्ती में रमा सकता हो, जो जीते-जी मोक्ष दिला सकता हो, जिसके चरण-कमल के सुमिरन से दिव्य दृष्टि आ जाती हो, जो भक्ति का प्रेमरस पिला सकता हो, कर्म की निष्कामता सिखा सकता हो, जो मुक्त हो, काल की हद से परे हो, जो अनेक योग-क्रियायें सहज ही में कृपादृष्टि से करा दे, इन्द्रिय प्रलोभनों से छुटकारा दिला दे, जो स्वयं सिद्ध हो और सिद्धों के दर्शन भी करादे, यही सिद्ध मार्ग है।

प्राण बिना जीवन नहीं, गुरु बिना ज्ञान नहीं।
शक्ति का विकास नहीं, अन्धकार का नाश नहीं ॥
शक्तिपात बिना कोई सिद्ध योग नहीं।
गुरु सम मित्र नहीं, जो अपने सम कर देता ॥
गुरु सम शत्रु नहीं, जो जीवत्व भाव मिटा देता।
गुरु सम दाता नहीं, जो ब्रह्म पद दिला देता ॥

कैलाश के रमणीक शिखर पर भक्ति के साधन के लिये पार्वतीजी शंकरजी को प्रणाम करके गुरु दीक्षा देने के लिए आग्रह करते हुये पूछती हैं—

केन मार्गेण भो स्वामिन देही ब्रह्ममयो भवेत ।

हे जगत् के स्वामी कौन से मार्ग से देही अर्थात् जीव ब्रह्ममय हो जाता है ? भगवान प्रसन्न होकर बतलाते हैं—

किञ्चित गुरुं बिना नान्यत सत्यं सत्यं वरानने ।

हे सुन्दर मुख वाली ! गुरु के सिवाय अन्य कुछ नहीं है, यह सत्य है सत्य है। ★

श्री महाप्रभु जी की सर्वव्यापकता

श्री अवनीश कुमार भटनागर (सहारनपुर)

आध्यात्मिक जगत में जहां कहीं भी प्रकाश दिखाई देता है, वह अधिकांशतः करुणानिधान योगेश्वर भगवान श्री रामलाल महाप्रभुजी या उनकी सर्वशक्ति सम्पन्न विभूतियों द्वारा ही दिया गया है। कैलाश, हिमालय के पवित्र शिखरों को त्यागकर स्वयं शिव महाप्रभु श्री रामलाल जी अमृतसर की पावन भूमि पर रामनवमी के शुभ दिवस पर ब्राह्मण कुल में प्रकट हुए और योग का प्रकाश जगत को दिया। असंख्य व्यक्तियों की शरणागति महाप्रभु श्री रामलाल जी के चरणों में हुई है। अहैतुकी कृपाओं के दाता महाप्रभु श्री रामलाल जी ने शरणागतों को अपनी कृपाओं से मालामाल कर दिया और योगविहीन जग को योग शक्ति सम्पन्न बना दिया। अनादि सिद्ध-सिद्धेश्वर साक्षात् परम शिव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने आध्यात्मिक जगत में अपने योग ऐश्वर्य द्वारा सिद्धान्त युक्त पवित्र मार्ग का निर्माण किया और अपने पवित्र साधकों को दृढ़तापूर्वक दिव्य मार्ग पर चलाकर एक से बढ़कर एक योगियों का निर्माण किया। इनमें से कुछ योगी तो श्री महाप्रभुजी की अलौकिक अनुकम्पाओं को सर्वसाधारण के समक्ष प्रकट कर देते थे और कुछ योगी कभी यह नहीं बता सके कि हमारे शक्तिदाता कौन हैं। जो भी हो इन दोनों ही प्रकार के योगियों पर एक ही पावर हाउस से पावर सप्लाई की गई और वह है सर्वशक्तिमान श्री रामलाल महाप्रभुजी। श्री रामलाल महाप्रभुजी ने महायोगिनी रामरत्ती, बिजना, देवीरामा, देवी शलमा, महायोगिनी श्री द्रौपदी माताजी, महात्मा ऋषिदेवी जी, स्वामी मुलखराज जी, योगिराज हरिहरानन्द जी, योगिराज नृसिंहमूर्ति जी, महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, बालकिशन दास वैरागी, श्री गोपालानन्द जी, आदि संक्षेप में। और दूसरे प्रकार के शिष्यों में योगिराज पूज्यपाद श्री देवरहा बाबा जी, माता लालदेवी अमृतसर वाली (जिन्होंने वैष्णव देवी की गुफा हरिद्वार में बनवाई) श्री हंसजी महाराज, प्रेम नगर वाले (वर्तमान रेलमन्त्री श्री सतपाल जी महाराज के पिताश्री) श्री श्यामाचरण साहिड़ी जी, श्री महाप्रभुजी के ही एक अवतार श्री महाअवतार बाबाजी के शिष्य हैं श्री गोरखनाथ जी। प्रख्यात सन्त श्री आसाराम जी बापू, विश्वविख्यात सिद्ध सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दर्शनों को श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में हमारे एक सिन्धी गुरुभाई के साथ आये थे और काफी देर तक सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी से वार्तालाप करते रहे और अपनी जिज्ञासा शान्त करते रहे एवं श्री प्रभुजी की आरती के समय कृपापात्र व शक्तिपात व ध्यान स्थितियों को देखकर बरबस यह कह उठे थे अरे भाई यहां तो सभी की कुण्डलिनी जाग्रत है।

ऊपर वर्णित सभी विभूतियाँ आदि सिद्ध सिद्धेश्वर स्वयं शिव श्री रामलाल महाप्रभु जी के प्रकाश के द्वारा ही प्रकाशित है। परम ज्योतिमय सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी अपने श्रीमुख से कहा करते थे कि हमें मालूम है कि श्री महाप्रभुजी की कृपा से आज बड़ी बड़ी संस्थायें चल रही हैं पर हम प्रायः इन बातों का जिक्र नहीं करते कि कहीं उनके वर्तमान गद्दीनसीन लोग यह न समझ लें कि यह तो अपना प्रचार बढ़ाने के लिए हमसे नाता जोड़ रहे हैं। सिद्धयोग के नवम्बर अङ्क में एक घटना छपी थी—"अलौकिक योग-दीक्षा"। यह अवश्य ही एक विलक्षण घटना है और ऐसे लोगों की बातों का प्रत्यक्ष उत्तर है जो सर्वशक्ति सम्पन्न सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाप्रभुजी के विषय में हमेशा शंकित ही रहे और श्री सद्गुरुदेव भगवान के शरीर त्याग लीला का दिखावा करने के बाद से तो उल्टी-सीधी हजारों बातों के जन्मदाता भी रहे हैं। उपरोक्त अलौकिक दिव्य घटना का मुझे काफी पहले से पता था और यह ही नहीं ऐसी कई घटनायें और हैं जिसमें करुणा निधान ने प्रत्यक्ष योग दीक्षा सुपात्रों को दी है और श्री गीता जी के इस वाक्य 'परित्राणाय साधना' को सार्थक बनाया है। करुणा निधान परम सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी, महाप्रभुजी सर्वशक्ति सम्पन्न हैं जो चाहे वह कर सकते हैं, वह सर्वसमर्थ हैं वह जैसे पहले मनुष्यों का कल्याण करते थे उससे कहीं अधिक स्वतन्त्र रूप से अब भी कल्याण कर रहे हैं।

नवम्बर अङ्क के इस लेख में एक महापुरुष श्री गोगाजी महाराज जो अमर सिद्ध योगिराज श्री गोरक्षनाथ जी के शिष्य हैं और इनकी समाधि राजस्थान में बागड़ नामक स्थान पर बनी हुई है। अब से कई सौ वर्ष पूर्व यह सूक्ष्म रूप से आकाश मार्ग द्वारा हरिद्वार में कुम्भ पर्व पर स्नान करने के लिए जा रहे थे, जब ये सहारनपुर के ऊपर से गुजर रहे थे तो इनको नीचे से रोने की आवाज आई, इन्होंने नीचे देखा तो एक मछली पकड़ने वाला रोता हुआ दिखलाई दिया, जो कह रहा था आज चार दिन हो गए अन्न त्यागे हुए, मेरी तो जैसे भगवान भी नहीं सुनता। श्री गोगाजी महाराज घोड़े सहित नीचे उतर आये और मछुआरे से बोले हम जाहिरवीर गोगाजी महाराज हैं। आज से तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जायेंगे और अपने हाथ में पकड़ा हुआ नेजा मछुआरे को देते हुए बोले—यह हमारा ही प्रतिरूप है। जो इसकी पूजा-सेवा करेगा उसे मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होगी। जिस स्थान पर सहारनपुर में यह घटना हुई उस स्थान पर श्री गोगाजी की समाधि बनी हुई है। तीन दिन के लिए श्री जाहिरवीर गोगाजी द्वारा दिया गया नेजा मछुहारे के वंशजों द्वारा स्थापित किया जाता है और राजस्थान, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा के लोग पन्द्रह दिन तक चलने वाले इस मेले में भारी संख्या में आते हैं और श्री गोगाजी के प्रतिरूप नेजे पर वस्त्र, प्रसाद चढ़ाकर पूजा करते हैं और मनोइच्छित वर प्राप्त करते हैं।

परम ज्योतिमय सर्वशक्ति सम्पन्न सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन, महाप्रभुजी ने अपने श्री मुख से यह शब्द इलाहाबाद में लगने वाले कुम्भ मेले में किसी समय कहे थे कि महाप्रभु श्री रामलालजी ही भगवान मत्स्येन्द्र

(शेष पृष्ठ २५ पर)

आसक्ति बन्धन-कारक

❀ डा० जयनारायन राय
६/५ तालकटोरा लेबर कॉलोनी
तालकटोरा रोड, लखनऊ-२२६००४

कौरवों एवम् पाण्डवों की सेना के बीच युद्ध के लिये सन्नद्ध रथारूढ़ अर्जुन अपने परिजनों, वयोवृद्ध भीष्म पितामह एवं गुरु द्रोणाचार्य से युद्ध करने के भावी दुष्परिणामों से व्यथित हो मोहग्रस्त हो गया, उसने श्रीकृष्ण भगवान से युद्ध न करने का संकल्प व्यक्त किया। वहीं से सम्पूर्ण गीतामें श्रीकृष्ण भगवान ने अपने उपदेश में ज्ञानयोग, कर्मयोग एवम् भक्तियोग के मार्ग में आने वाली आसक्तियों के बन्धनों से बचने के उपायों को क्रमिक ढङ्ग से अर्जुन को स्पष्ट किया। ये तीनों योग एक दूसरे के पूरक होते हुए भी व्यक्ति अपनी रुचि एवम् क्षमता के अनुसार किसी भी योग-मार्ग पर चलने के लिये अधिकारी है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन के माध्यम से प्राणीमात्र को प्रारम्भ में ही सम्पूर्ण गीता का निचोड़ (सूत्र) दूसरे अध्याय में दे दिया और आगे के अध्यायों में उनका विस्तार किया।

अर्जुन अपनी देह और देह के सम्बन्धों को इतना सत्य मान बैठा है कि वह युद्ध नहीं करने की बात करता है। इस स्थिति में श्रीकृष्ण भगवान सबसे पहले अर्जुन को विवेक और विचार (सांख्य) से योग किस प्रकार सध सकता है, आत्म-ज्ञान का बोध कराते हैं। मनुष्य शरीर मात्र नहीं है, न वह शरीर और मन की पूर्ति है, प्रत्युत वह आत्मा है, जो सब प्रकार के परिवर्तनों से रहित है। पर अज्ञान के कारण वह अपने आपको देह मान बैठा है। इसलिए देह के सम्बन्धों को सत्य मानकर जीवन के वास्तविक सत्य को गँवा बैठता है। विवेक और विचार उसके इस अज्ञान को दूर करते हैं और उसे सिखाते हैं कि देह तो कपड़े की तरह है। पुराने कपड़े फटे कि हम नये पहन लेते हैं। इसी प्रकार आत्मा एक के बाद दूसरी देह धारण करती है। जिस व्यक्ति में जब आसक्ति का बन्धन छूटता है, तब उसमें विवेक-विचार की सहायता से ज्ञान दृढ़मूल हो जाता है, वह अपनी देह और मन के परिवर्तनों का साक्षी हो जाता है और आत्म-स्वरूप हो जाता है। इसी को स्थितप्रज्ञता के नाम से जानते हैं।

कर्म से फलाशा और कर्मासक्ति भी बन्धन कारक हैं। इसी कारण श्रीकृष्ण भगवान अपने उपदेश में अर्जुन से कहते हैं कि—

(पृष्ठ २४ का शेष)

नाथ जी हैं। इसी परम्परा में हम आगे चलते हैं तो श्री मत्स्येन्द्र नाथ जी के श्री गोरक्षनाथ जी और इनके शिष्य श्री जाहिरवीर गोगाजी महाराज और अपने यहाँ महाप्रभु श्री रामलाल जी और इनके परम शिष्य सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज और आगे हम लोग इनके शिष्य सभी योग परिवार के ही तो हैं। ★

कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा
ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।

(गीता २/४७)

अर्थात् तेरा अधिकार कर्म करने में ही है, उनके फलों में कभी भी नहीं । तू कर्मफल प्राप्ति का कारण मत बन और न तेरी प्रवृत्ति कर्म न करने में हो ।

व्यक्ति को कर्मफल प्राप्त करने की इच्छा से कर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए । फल की अत्यधिक लालसा कर्म की गुणवत्ता का नाश कर देती है । फल का चिन्तन करने से समय और शक्ति दोनों का अपव्यय होता है । जो व्यक्ति फल की आसक्ति से कर्म करते हैं, वे कर्म से बँध जाते हैं । फलस्वरूप निर्द्वन्द और आत्मवान होने की अवस्था उनसे बहुत दूर हो जाती है । अतः कर्म और फल दोनों के कारण तुम मत बनो, यानी "मैं कर्म का कर्त्ता हूँ" इस प्रकार कर्तृत्व का अभिमान भी अपने ऊपर मत लो और साथ ही "मैं फल का भोग करूँगा" इस प्रकार फल भोक्तृत्व का अभिमान भी तुममें न आये । यह आसक्ति अहङ्कार-बन्धन का कारण बनती है ।

कर्म में आसक्त होना भी योग के लिये बन्धन है । इस प्रकार गीता में 'असङ्ग' या 'अनासक्ति' का तात्पर्य द्विविध है—कर्मफल से असंग हो जाना और साथ ही कर्म से भी । इस प्रकार कर्मफल के प्रति आसक्ति के त्याग के साथ-साथ कर्म विशेष के प्रति आसक्ति का त्याग परमावश्यक है । उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति परोपकार और जनसेवा के लिये आश्रम का निर्माण करता है । आश्रम के माध्यम से गतिविधियों का सञ्चालन करते हुए वह कर्मयोग के फलाशा-त्याग रूप पहले सोपान पर आरूढ़ होता है, पर सम्भव है कि सेवा कार्य करते-करते उसे आश्रम पर ही आसक्ति हो जाये और यदि कभी उसे छोड़ने का अवसर आये, तो उसे मानसिक कष्ट हो । यह अपूर्ण कर्मयोग है । योग पूर्ण तब होता है, जब उसे साधन पर भी आसक्ति नहीं रह जाती । तभी तो श्रीकृष्ण भगवान कर्मासक्ति एवं फलासक्ति के बन्धन से छुटकारा पाने (असंगता) के सम्बन्ध में बारम्बार दुहराते हैं । यथा—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि
सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।

(गीता ५/१०)

योगिनः कर्म कुर्वन्ति
सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।

(गीता ५/११)

एतान्यपि तु कर्माणि
सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।।

गीता १८/६)

सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव

(गीता १८/९)

श्रीकृष्ण भगवान स्थान-स्थान पर अनासक्ति और अनासक्त पुरुष की प्रशंसा करते हैं । यथा—

असक्त बुद्धिः सर्वत्र
जितात्मा विगतस्पृहः ।

(गीता १८/४९)

असक्तं तेषु कर्मसु ।

(गीता ९/९)

असक्तः स विशिष्यते ।
(गीता ३/७)

तस्मादसक्तः सततं
कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म
परमाप्नोति पूरुषः ।।
(गीता ३/१९)

विषयों आदि आसक्ति के बन्धन तथा भ्रम व मोह से छुटकारा पाने वाले स्थितप्रज्ञ व्यक्ति की प्रशंसा में श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन को अपने उपदेश में बतलाया कि—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाःसुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्त-
त्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता ।।
यदा संहरते चायं
कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य-
स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता ।।
(गीता २/५६, ५७, ५८)

अर्थात् जिसका मन दुःखों में उद्विग्न नहीं होता और सुखों के प्रति जिसकी स्पृहा नष्ट हो चुकी है, ऐसे आसक्ति, भय, और क्रोध से रहित व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ मुनि कहा जाता है। जो व्यक्ति सभी विषयों में आसक्ति से रहित है, जो अच्छा या बुरा कुछ भी प्राप्त होने पर न तो आनन्दित होता है, न विरक्ति का बोध करता है, उसका ज्ञान प्रतिष्ठित हुआ करता है अर्थात् वही स्थितप्रज्ञ है। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को सिकोड़ लेता है, वैसे ही जो अपनी समस्त इन्द्रियों को इन्द्रिय विषयों से खींचकर भीतर समेट लेता है, उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है।

वहीं दूसरी ओर विषयों के प्रति आसक्ति रखने वाले व्यक्ति की पतनावस्था का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन के माध्यम से प्राणीमात्र को बतलाते हैं कि—

ध्यायतो विषयान्पुंसः
सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः
कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः
सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।
(गीता २/६२-६३)

अर्थात् विषयों का चिन्तन करते रहने से मनुष्य के मन में उनके प्रति आसक्ति पैदा होती है। आसक्ति चाह को जन्म देती है और चाह से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोध से चित्त में मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मृति में विभ्रम पैदा हो जाता है। स्मृति के लोप से उचित-अनुचित का विचार करने वाली बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि के नाश से स्वयं मनुष्य का ही नाश हो जाता है।

ऐसी दशा में व्यक्ति को सभी प्रकार की आसक्तियों के बन्धन से छुटकारा पाकर परम शान्ति और ब्राह्मी स्थिति पाने का प्रयास करना चाहिये, जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान के इन उपदेशों से स्पष्ट है कि—

विहाय कामान्यः
सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः
स शान्तिमधिगच्छति ॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः
पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि
ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥
(गीता २/७१-७२)

अर्थात् जो पुरुष समस्त कामनाओं को छोड़कर स्पृहा, ममता और अहङ्कार से रहित हो व्यवहार करता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन, यही ब्रह्मस्वरूप में अवस्थिति है। इस अवस्था को पाकर मनुष्य संसार में फिर मोह-भ्रम में नहीं पड़ता। मृत्यु के समय भी इस ब्राह्मी स्थिति में प्रतिष्ठित रहकर वह ब्रह्म में लीनता को प्राप्त करता है।

'सिद्धयोग' की मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं० ४

१.	प्रकाशन का स्थान—	श्री सिद्धगुफा, सवांई, आगरा (उ० प्र०)
२.	प्रकाशन का अवधिक्रम—	मासिक।
३.	मुद्रक का नाम—	विनय गजानन शर्मा।
	राष्ट्रीयता—	भारतीय।
	पता—	कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा-१।
४.	प्रकाशक का नाम—	विनय गजानन शर्मा कृते सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई (आगरा)
	राष्ट्रीयता—	भारतीय।
	पता—	श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा)
५.	सम्पादक का नाम—	आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा।
	राष्ट्रीयता—	भारतीय।
	पता—	श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा)।
६.	स्वत्वाधिकारी—	ब्रह्मलीन अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

मैं विनय गजानन शर्मा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

कृते सिद्धगुफा प्रकाशन
विनय गजानन शर्मा

ठाकुर राजकुमार को अशरण-शरण

❀ श्री केशवदेव उपाध्याय (वाराणसी)

ग्राम महुआखेड़ा जिला एटा के निवासी ठाकुर राजकुमार सिंह जी हमारे वरिष्ठ गुरुभाई हैं। इनके एक अनन्य मित्र थे, जो ब्राह्मण थे। ठाकुर राजकुमार सिंह जी अपने इस ब्राह्मण मित्र को पंडितजी कहकर सम्बोधित किया करते थे। आज से कुछ वर्ष पूर्व पण्डित जी का शरीर पञ्च तत्व में विलीन हो गया। पण्डितजी ज्योतिष विद्या के प्रकाण्ड विद्वान, महान अध्यात्म प्रेमी एवम् श्रद्धालु प्राणी थे। आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज का योग प्रचार कार्यक्रम उन दिनों, जिस समय के कथानक का वर्णन किया जा रहा है; इनके गाँव के ही करीब के गाँव मलावन में ही हुआ करता था। यद्यपि पण्डितजी आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज से स्थूल रूप से दीक्षित नहीं थे, तथापि बराबर उनका स्मरण एवम् चिन्तन किया करते थे एवम् जितने वर्षों तक मालवन का योग प्रचार कार्यक्रम चलता रहा, वे पूर्ण समय के लिये उसमें सम्मिलित हुआ करते थे। ये मित्र सायंकाल का समय तो अवश्य ही साथ गुजारा करते थे। श्री सिंह का भोजन बिल्कुल आसुरी वृत्ति का था। शायद ही ऐसी कोई रात्रि व्यतीत हुई हो जिसमें रात्रि भोजन में मांसाहार न बना हो। सायंकाल ये शिकार किया करते थे एवम् रात्रि में वही इनका मुख्य भोज्य पदार्थ था। मदिरा सेवन भी यदा-कदा हुआ करता था। यद्यपि पण्डितजी शुद्ध शाकाहारी एवं सरल स्वभाव के थे परन्तु मित्रता के नाते या यों कहा जाय कि पूर्व जन्म के संस्कार वशात् सायंकाल साथ ही रहते थे। प्रायः पण्डितजी सायंकाल आरम्भ होते ही श्री राजकुमार जी के घर आ जाते थे एवम् फिर अँधेरा होने तक साथ ही समय गुजरता था। कभी-कभी जब पण्डितजी नहीं आते थे तो श्री सिंह अपनी बन्दूक लेकर उनके घर पहुँच जाते थे एवम् फिर सायंकाल का कार्यक्रम आरम्भ हो जाता था। गुरुदेव के मलावन कार्यक्रमों के दिनों में, पण्डित जी उसमें भाग लेने नित्य सायंकाल करीब तीन बजे पहुँच जाते थे एवम् प्रवचन-आरती की समाप्ति पर अपने घर आते थे। उन दिनों जब ये पण्डितजी का पता लगाने उनके घर जाते थे तो यह पता लगता था कि एक महात्माजी का प्रवचन सुनने मलावन गये हैं एवम् रात्रि तक वापस आयेंगे, तब ये उनको साथ ले आने के लिए उस कार्यक्रम में पहुँच जाते थे एवम् इशारे से बुलाते थे। उनके न आने पर, उनके इन्तजार में कार्यक्रम की समाप्ति तक रुक जाते थे। वापस आते समय ठाकुर साहब कहते थे कि कितने अच्छी प्रकार से भोली-

भोली जनता को मूर्ख बनाकर अपने चेलों के साथ रबड़ी-मलाई एवं पकवान खा-खाकर मोटा हो गया है, पर आश्चर्य तो यह है कि आप उनसे अधिक विद्वान होकर भी उनके चक्कर में फंस गये हैं। पण्डितजी इनकी बातों को गलत बतलाकर कहते थे कि अरे मित्र! तुम नहीं जानते, ये बाल-ब्रह्मचारी एवम् सिद्ध-योगी हैं। पण्डितजी अनेक प्रकार के उदाहरण एवम् साक्ष्य देकर गुरुदेव भगवान को सिद्ध-योगी प्रमाणित करते थे परन्तु श्री राजकुमार जी, इसे बिलकुल मन-गढ़न्त बातें कहकर उनका उपहास करते थे एवम् कहते थे कि ऐसे ब्रह्मचारी तुम्हें ही मुबारक हों। इस प्रकार का वार्तालाप गुरुदेव के तीन वर्षों के कार्यक्रमों तक लगातार चलता रहा। प्रत्येक साल के कार्यक्रम के दिनों में उपरोक्त वार्तालाप अवश्य-अवश्य होता था।

इनके द्वारा देखे जाने वाले तीसरे वर्ष के योग प्रचार कार्यक्रमों (मलावन में) एक अद्-भुत, अलौकिक एवं अहैतुकीकृपा से पूर्ण घटना घटित हुई। हुआ यह कि एक विधवा कुम्हार की पत्नी का डेढ़ वर्ष का इकलौता पुत्र मर गया। इस विधवा का मकान उसी गाँव मलावन में था जहां श्री सद्गुरुदेव भगवान का कार्यक्रम चल रहा था एवम् जिस ग्राम में हमारे बहुत-से गुरुभाई बहनों का निवास है। उस समय श्री गुरुदेव भगवान के प्रवचन का विषय था, योगी की अतुलित शक्ति एवं सामर्थ्य। आराध्यदेव जी ने अनेकानेक योगियों का उदाहरण देकर यह बात पूर्ण-रूपेण सिद्ध कर दी थी कि एक योगी "कर्तुम अकर्तुम अन्यथा न कर्तुम" की सामर्थ्य रखता है, अर्थात् लोक-परलोक के किसी भी कार्य को जिस प्रकार चाहे वह कर सकता है। बने हुए कार्य को बिगाड़ दे, बिगड़े हुए कार्य को बना दे एवम् फिर बने हुए कार्य को बिगाड़ दे। प्रवचन के इसी तारतम्य में उन्होंने योगियों के श्राप से प्राण त्यागने वाले जीवों एवं उनके शुभ संकल्प से मृत्यु को प्राप्त जीव को पुनः जीवित होने के उदाहरण भी दिये थे। गाँव के कुछ ऐसे लोगों ने जिन्हें गुरुसत्ता का बोध नहीं था, और जो हमारे आदरणीय गुरुभाई-बहनों द्वारा आराध्यदेव की भगवत् तुल्य आरती-पूजन-प्रार्थना को मात्र ढोंग ही मानते थे, कहने लगे कि इनके शिष्य तो इनको भी पूर्ण सिद्ध योगिराज बताते हैं तो यह महात्माजी इसे जिन्दा कर दें तो जानें? ऐसे ही लोगों ने उस विधवा को जिसका डेढ़ वर्ष का बालक करीब ६ बजे ही मर गया था, दूसरे दिन प्रातः सात बजे ही मृत बालक के शरीर के साथ योग-प्रचार कार्यक्रम स्थल पर भेज दिया एवं खूब अच्छी प्रकार समझा दिया कि कार्यक्रम का आज अन्तिम दिन है, महात्माजी से अपने बच्चे को जिन्दा करने की प्रार्थना करना एवं जब तक बच्चा जिन्दा न हो जाय, वहाँ से मत हटना।

प्रातः सात बजे बच्चे के साथ पहुँचते ही उस विधवा ने प्रवचन स्थल पर बिछे दरी (फर्श) पर बच्चे के शव को लिटा दिया एवं जोर-जोर से करुण-क्रन्दन के साथ विलाप करने लगी। उसकी आवाज सुनकर आराध्य-

देव जी ने उसे अपने निवास वाले कमरे में बुलाया, वह बच्चे के शव के साथ ही जाना चाहती थी परन्तु हमारे गुरुभाइयों ने गुरु-निवास में प्रवेश करने से रोक दिया। वह दरवाजे से बाहर खड़ी होकर अपनी व्यथा सुनाने लगी एवम् गुरुदेव अपने बिस्तर से उठकर दरवाजे के पास आ गये एवम् दोनों दरवाजे के पल्ले हाथ से पकड़कर शान्त स्वभाव से उसकी बात सुनने लगे। जब विधवा ने अपनी प्रार्थना समाप्त की, गुरुदेव भगवान ने कहा—"लल्ली! हम तुम्हारे लड़के के मरने से काफी दुःखी हैं परन्तु विधि का विधान ही ऐसा है कि मरा हुआ जीव फिर जीवित नहीं हो सकता।" विधवा ने कहा—"महाराज जी! आप सिद्ध पुरुष हैं, ईश्वर हैं, ऐसा लोग बतलाते हैं, आप हमारे बच्चे को किसी प्रकार जीवित करने की कृपा करें। हमारे पतिदेव का शरीर कुछ माह पूर्व छूट गया है एवम् यह बच्चा भी मर गया है, यदि आप इसे किसी प्रकार जीवित कर दें तो हमारा जीवन बच सकता है; वरना मैं भी मर जाऊँगी।"

गुरुदेव ने समझाते हुए कहा—"लल्ली! क्या किया जाय, यह विधि का विधान ही है। जो जन्म लेता है उसका मरना निश्चित है एवम् जो मरता है उसका जन्म लेना निश्चित है। इसमें तुम्हें शोक करने की आवश्यकता नहीं है, यह हम अच्छी प्रकार से समझते हैं कि पुत्र-मृत्यु बहुत बड़ा कष्ट है, हम तुम्हारे दुःख से दुःखी हैं परन्तु विधि के विधान में हम कर ही क्या सकते हैं।" गुरुदेव भगवान अनेक प्रकार से शास्त्र सम्मत बातें कहकर उसे समझाते रहे परन्तु उनकी सब बातों को अनसुनी करके वह विधवा करुण-क्रन्दन के साथ विलाप करते हुए मात्र एक ही प्रार्थना करती थी कि हमारे बच्चे को आप किसी प्रकार जिन्दा कर दें। अनेक प्रकार से समझाने के बावजूद जब उसके विचार में कोई परिवर्तन नहीं आया तो आराध्यदेव ने वहाँ उपस्थित हमारे गुरु-भाइयों से कहा कि लल्ला! इसे यहाँ से ले जाकर समझाओ और खूब अच्छी प्रकार से बतला दो कि मरा हुआ प्राणी फिर जीवित नहीं हो सकता। गुरुभाई लोग उसे लेकर फिर कार्यक्रम स्थल (पण्डाल) में ले गये एवम् समझाने लगे। परन्तु उस पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने कहा कि या तो मैं बच्चे को जिन्दा लेकर जाऊँगी या आप लोगों को हमारा भी दाह-संस्कार इस बच्चे के साथ ही करना पड़ेगा। गुरुदेव भगवान को उसकी यह बात हमारे गुरुभाइयों ने बतलाई। गुरुदेव भगवान ने कहा कि बड़ी जिद्दी औरत है। बतलाओ लल्ला! हम कर भी क्या सकते हैं। इसके पश्चात् विधवा पण्डाल में अपने पुत्र-शव को लेकर विलाप करती रही एवम् गुरुदेव अपना सामान पैक कराने में व्यस्त रहे। तथा हमारे गुरुभाई-बहन गुरुदेव की विदाई करने में व्यस्त रहे।

सायंकाल करीब तीन बजे गुरुदेव भगवान, जब जाने से पूर्व; योग-योगेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड नायक अपने पूज्य गुरुदेव (हमारे आपके दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) की आरती कर चुके एवं हमारे गुरुभाई-बहन जो गुरुदेव भगवान की विदाई वाली आरती आरम्भ करने वाले थे, इसी बीच आराध्यदेव जी ने हमारे एक वरिष्ठ गुरुभाई को बुलाकर धीरे से कान में कहा—"लल्ला! उस विधवा का क्या हुआ, वहीं है या गई।" उसने कहा—प्रभुजी! "वह तो वैसे ही बैठी, अभी रो रही है।"

कहावत है "आ गई लहर शिवा के मन में" आखिर दयासागर को दया आ ही गई। उन्होंने हमारे उस गुरुभाई को पुष्प प्रसाद देकर कहा—"भल्ला ! उस विधवा को लेकर तुम किसी योग्य वैद्य के पास अभी चले जाओ, एवम् खूब अच्छी प्रकार से इसका परीक्षण कराओ; हो सकता है कि इसके प्राण कोष कहीं रुक गये हों एवम् वापस आ जायँ। कहावत है—"सिद्ध वचन पलटे नहीं, पलट जाय ब्रह्माण्ड।" वही हुआ जो आराध्य-देवजी का संकल्प था। हमारे गुरुभाई ने उस विधवा को; उसके शिशु के शव के साथ लेकर प्रमुख वैद्य के पास तत्काल प्रस्थान किया। परन्तु आश्चर्य, महान आश्चर्य ? ठीक चार बजे जिस समय श्री गुरुदेव भगवान ने मलावन ग्राम की सीमा समाप्त की, उसी समय उस बच्चे के शरीर में कम्पन हुआ एवम् धीरे-धीरे वह बच्चा जिन्दा हो गया। हमारे गुरुभाई उस विधवा महिला को उसके जीवित डेढ़ साल के बच्चे को साथ लेकर रास्ते में से ही उस स्थान पर वापस आ गए, जहाँ आराध्यदेव जी का योग-प्रचार कार्यक्रम (मलावन) के समय निवास स्थान था। गुरुदेव जी चले गये थे परन्तु वहाँ इस अलौकिक कृपा को देखने कई सौ नर-नारी एकत्र हो गये एवं सभी ने श्री प्रभुकृपा का मुक्तकण्ठ से बार-बार वर्णन किया एवं उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

कर्ण परम्परा से यह बात सुनकर ठाकुर राजकुमार जी भी मलावन गाँव पहुँच गये, एवं इस असम्भव घटना को प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा एवं आराध्यदेव जी को अपने द्वारा कहे गये अपशब्दों एवं कुविचारों के लिए उन्हें बहुत ग्लानि हुई। उन्होंने मन ही मन बारम्बार क्षमा याचना की। इस घटना ने उनके मानस पटल पर ऐसी छाप छोड़ी कि श्री प्रभूजी के चरणों में उनकी श्रद्धा का बीज अंकुरित हो गया। उन्होंने तत्काल प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक सिद्ध योगिराज जी के स्थूल दर्शन नहीं कर लूँगा, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। पण्डितजी इस अद्-भुत घटना को देखकर अपने घर चले गये थे। श्री राजकुमार जी आराध्यदेव का पता लगाने श्री पण्डितजी के घर गये एवं अपने मन के पूरे भाव बतलाने के बाद उनसे यह पूछा कि इस समय योगिराज जी कहाँ मिलेंगे। पण्डितजी ने कहा—"उनका ठीक-ठीक पता तो सवांई धाम से ही लग पायेगा, वैसे वे ब्रह्मचारी जी यहाँ का कार्यक्रम समाप्त कर अपने सवांई आश्रम ही गये हैं।" श्री सिंह, पण्डितजी के घर से चलकर सीधे सवांई आश्रम पहुँच गये। आश्रम पर जब उन्होंने आदरणीय ब्रह्मचारी भाइयों से जान-कारी प्राप्त की तो पता चला कि श्री गुरुदेव भगवान एकान्तवास करने वृन्दावन धाम गये हुए है। परन्तु आश्रमवासी भाइयों को वृन्दा-वन में गुरुदेव भगवान के निवास स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं ज्ञात था, अतः उन्होंने सिर्फ इतना ही बतलाया कि वहीं किसी धर्मशाला या मन्दिर में निवास कर रहे होंगे। श्री सिंह सवांई आश्रम से चलकर वृन्दावन धाम पहुँच गये। अब रात्रि आरम्भ हो गई

थी, अतः इस समय ढूँढना उचित न समझ कर उन्हीं के चिन्तन एवम् स्मरण में रात्रि व्यतीत की एवम् प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही ढूँढना आरम्भ किया एवं सूर्यास्त तक ढूँढते रहे। उन्होंने अपनी समझ से कोई भी ऐसा स्थान नहीं छोड़ा जहाँ बाहर से आने वाले तीर्थयात्री या पथिक के ठहरने की सम्भावना हो। इनका शरीर थककर चूर-चूर हो गया परन्तु श्री प्रभु के दर्शन नहीं हो सके। ये विश्राम करने की नीयत से एक मन्दिर के चबूतरे पर बैठ गये एवं विचार करने लगे कि हे प्रभु! यदि तुम सिद्ध योगिराज हो तो क्या आपको यह पता नहीं है कि मैं केवल आपका दर्शन करना चाहता हूँ। आपसे कुछ माँगने थोड़े ही आया हूँ। हमें आपसे कुछ भी नहीं चाहिये। मैं सिर्फ आपका दर्शन करना चाहता हूँ। उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की कि यदि आप सर्व समर्थ एवं अन्तर्यामी हैं तो अब हमें दर्शन देने की कृपा करें वरना मैं लिफाफे में पता लिखकर आपके सवाई धाम पर भेजने जा रहा हूँ एवं उसमें यही बात लिखूँगा कि ऐ महात्मा जी के शिष्यो! तुम्हारे गुरुदेव झूठे हैं, कुछ नहीं जानते, कोई शक्ति नहीं रखते। केवल तुम लोगों को एवं अन्य शिष्यों तथा भोली जनता को मूर्ख बनाकर रबड़ी-मलाई खाते हैं एवं गलत ही अपनी पूजा करवाते हैं। यह विचार पक्का कर वह लिफाफा लेने की नीयत से स्टेशनरी की दुकान की तलाश में निकल पड़े। अभी मुश्किल से दस ही कदम चले होंगे कि खूब बड़े-बड़े गेंदे के पुष्पों की माला घुटनों तक पहने हुए आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी महाराज लगभग बीस कदम की दूरी पर आगे जाते हुए दिखलाई दिये। उन्होंने अपनी गर्दन तिरछी करके पीछे आते हुए श्री सिंह को मनोहर मुस्कान के साथ एक क्षण के लिये देखा एवं फिर आगे चलना आरम्भ किया। श्री सिंह ने खूब अच्छी प्रकार पहचान लिया कि ये सवाई धाम के सिद्धयोगी ब्रह्मचारी जी ही हैं। श्री सिंह उनके चरण-स्पर्श करने एवं अपने पूर्व के गलत मनोभावों के लिये क्षमा-याचना करने के लिये तेजी से उनकी ओर चलने लगे। परन्तु ये जितने तेज चलते थे, उसी अनुपात से श्री प्रभुजी भी उसी रास्ते पर बढ़ते जाते थे। श्री सिंह ने दौड़कर यह दूरी कम की एवं मात्र जब आठ कदम का फासला रहा तब श्री प्रभुजी एक चौराहा पड़ने पर बायीं तरफ मुड़ गये। श्री सिंह चौराहे पर पहुँचकर जब बायीं तरफ की सड़क पर देखने लगे तो आराध्यदेव जी कहीं भी दिखलाई नहीं दिये। बायीं तरफ के रास्ते एवं गलियों में आराध्यदेव जी महाराज को श्री सिंह ने लगभग एक घण्टे तक ढूँढा एवं फिर बैठकर सोचने लगे कि हमने तो केवल यही प्रार्थना की थी कि आप एकबार दर्शन देने की कृपा करें, सो उन्होंने हमें दर्शन तो दे ही दिये। इसके पश्चात् वे अपने घर आ गये एवं श्री प्रभुजी का अनवरत स्मरण एवम् चिन्तन करते रहे।

श्री प्रभुजी जब एकान्तवास से वापस होकर सवाई धाम पर पहुँचे तो श्री सिंह का उन्हें एक पत्र मिला। पत्र में उन्होंने स्थूल दर्शन लाभ की प्रार्थना की थी। श्री प्रभुजी ने उन्हें पत्र द्वारा सवाई आश्रम आने की आज्ञा प्रदान की। श्री सिंह, प्रभुजी का आज्ञा पत्र प्राप्त होते ही सवाई आश्रम पहुँच गये एवं स्थूल दर्शन प्राप्त कर अपनी मनो-वाञ्छित अभिलाषा पूर्ण की। उन्होंने आराध्यदेव जी की आज्ञा से सवाई धाम पर ही रात्रि निवास किया। प्रातःकाल उन्होंने श्री

चरणों में प्रार्थना की—"प्रभो ! गुरु-दीक्षा देकर, मुझे अपनी अशरण-शरण प्रदान करने की कृपा करें।" श्री प्रभु जी ने कहा—"लल्ला ! दीक्षा तो हम तुम्हें तभी देंगे जब तुम तीन साल तक बिल्कुल ही मांसाहार एवं मदिरापान न करो। तुम्हारे द्वारा दी जाने वाली दक्षिणा हम दीक्षा के चार साल बाद ही लेंगे।" आराध्यदेव जी की यह वाणी सुनकर जब श्री सिंह उदास एवं निराश होते दिखलाई पड़े तो श्री प्रभुजी ने मुस्कराते हुए कहा—"लल्ला ! उदास होने की कोई बात नहीं है, हम तुम्हें अवश्य ही दीक्षा देंगे। श्री प्रभुजी (हमारे आपके महाप्रभुजी) का स्मरण एवं चिन्तन करते हुए समय व्यतीत करो एवं जब भी समय मिले आश्रम आओ एवं आश्रम सेवा किया करो। यह सिद्धपीठ है, इसकी सेवा निष्फल नहीं जाती।"

श्री राजकुमार जी ने आराध्यदेव जी की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया जिसके परिणामस्वरूप तीन साल से पूर्व ही उनकी दीक्षा हो गई एवं दीक्षा के एक-दो वर्ष बाद ही श्री गुरुदेव भगवान ने उनकी दक्षिणा लेना आरम्भ कर दी। दीक्षा के बाद इनके परिवार में श्री प्रभु कृपा से ओत-प्रोत अनेक अलौकिक एवं अद्भुत घटनायें घटित हुई हैं जिसमें इनकी पुत्री नीलम को प्राणदान की घटना विशेष स्थान रखती है।

श्री राजकुमार सिंह का बड़ा पुत्र शंकर, गुरुदेव भगवान का लाड़ला शिष्य है। इसका विवाह-संस्कार आराध्यदेव जी की इच्छानुसार उनके द्वारा आदेशित स्थान पर सम्पन्न हुआ। इसके विवाह के कुछ दिन बाद ही नीलम की तबियत खराब होना आरम्भ हो गई एवं इतनी खराब हो गई कि डाक्टरों ने कहा कि अब यह जिन्दा नहीं बचेगी। वर्ष १९७९ जून के महीने में नौ दिन में मात्र पाँच या छः घण्टे ही उसे नींद आई होगी। तबियत ज्यादा खराब होने पर उस पर श्री महाप्रभुजी का आवेश हो जाता था। इस आवेश में उसने कई भविष्यवाणियाँ कीं जो अक्षरशः सत्य हुयीं। एक दिन इस आवाज को परिवार के सदस्यों ने टेप करना चाहा तो आवेशित नीलम ने कहा—"तुम लोग इसे टेप नहीं कर सकते एवं फिर मुस्कराते हुए कहा—अच्छा, तुम टेप करके ही देख लो।" बाद में उन्होंने उस टेप को सुना तो वह बिल्कुल अस्पष्ट था। इस बीमारी की हालत में यमराज के दूत कई बार उसके प्राण लेने आये, परन्तु नीलम के नेत्रों ने प्रत्यक्ष देखा कि महाप्रभु जी के भय से वह मकान के अन्दर प्रवेश नहीं कर सके। एक दिन तो नीलम के हाथ-पैर बिल्कुल ठण्डे पड़ गये एवं उसने कहा कि अब हमें प्रभु लोक में जाना है। परिवार के सदस्यों के इस अनुरोध पर कि यदि तुम मर जाओगी तो गाँव के लोग यह कहेंगे कि यह परिवार तो कहता है कि हमारे गुरुदेव एवं दादा गुरुदेव सर्वसमर्थ योगी हैं, फिर बालिका को क्यों नहीं बचा लिया। इससे गुरुजी एवं महाप्रभु जी की बदनामी होगी। नीलम ने हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभुजी (महाप्रभु जी) यदि हमारे शरीर के छूटने से आपकी बदनामी हो तो हमें अभी जिन्दा रहने देने की कृपा करें। फिर आँख खोलकर कहा कि लो, महाप्रभु जी ने मुस्कराते हुए स्वीकृति दे दी। २६ जून के लगभग जब वह आश्रम गयी तो गुरु जी महाराज की करुण कृपा से स्वस्थ होकर वापस आयी।

अहैतुकी कृपानिधि की करुणा कृपा से अब यह परिवार आनन्द से जीवन-यापन करते हुए लोक-परलोक सुधार रहा है। श्री प्रभु कृपा से यह परिवार धन्य हो गया है एवं सर्वसमर्थ की ऐसी कई कृपायें इस परिवार पर हुई हैं।

श्रीमद् गुरुणां गुणानुवादमाश्रम्

(शिखरिणीवृत्तम्)

श्री द्वारका प्रसाद शर्मा
३०६-ए (अभिषेक) "प्रियानिकुञ्ज" एल्डिको-उदयन २,
उतरेटिया, रायबरेली रोड, (लखनऊ)

गुरुणां महिमानं गदितुमलं नास्ति मम धीः,
कुतस्तेषां तेजोनिकरमय ब्रह्मणि गतिः ।
तथाप्येवं भूते गुरुषु गुणहीने मयि कृताः,
कृपा या याश्चैव गतिमतितरां प्रेरयति माम् ॥ १ ॥

क्व गर्ते लीनं मां विषय विषमामृतमयं,
मनोबुद्धिभ्याञ्चैव सततमसत्यं भावलिपरम् ।
स्वदीयं पादाब्ज शरणमगमं गुरुवर ! यदा,
मनो मे तावन्तः सकलकलयापक्ष्यति हिंस्राम् ॥ २ ॥

अयं मे मौढ्यं यन्न हि मम गुरुश्चक्षुविषयः,
स लीनो ज्योतिस्सु गतिमतितरांवेदयतिमाम् ।
मनो ! मन्दोऽसि त्वन्नहि सुकृतिमच्चिन्तयसि वै,
सदा दिव्यानां च परमस्थितिकानां तद्गतिः ॥ ३ ॥

स्वलीलां संकृत्य गुरुरिह गतो धामनि स्व के,
यथा रामः कृष्णः शिव इव च तेषां स्थितिरभूत् ।
क्व जन्माऽस्तेषां क्व च भवति सत्तिस्तु विषये,
अजन्मानां तेषां क्व नु भवति भावोऽपिजगति ? ४ ॥

वयं सर्वे धन्याः सद्गुरुमभिप्राप्य जनुषि,
कृपां कृत्वा परमाभयुजि च नो मोक्षपथि हि ।
क्व नीचान् विषयाणां रस परिप्लुतान् विट्कृमिनिभान्,
प्रकाश संदेश्यं समुदहरन्नीर विमले ॥ ५ ॥

लब्ध्वा वपु ब्रह्मिकुलेऽपिनास्ति, नृणां प्रवृत्तिर्न हि सत्पथेऽपि ।
अतीव भाग्येन च पुण्य संचयात्, साक्षात्कृतिरर्हति सद्गुरुणाम् ॥ ६ ॥

गुरुर्गते सम्प्रति नैव त्याज्यो, ध्येयो हृदीयान् भवतां भवेच्च ।
विश्वास-श्रद्धा हृदि जागृयाच्च, स्वान्तः स्थमेवोवसते यतो गुरुः ॥ ७ ॥

जाप्यं हि मन्त्रं गुरुणा प्रदत्तं, ध्येयं गुरुणां शुभदं स्वरूपम् ।
वाच्यं गुरोरेव गुणानुवृत्तं, पेयं गुरुणां चरणामृतञ्च ॥ ८ ॥

श्री गुरुदेव जी की कृपापात्रा—श्रीमती सुशीला देवी

❀ श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)
एत्मादपुर (आगरा)

लगभग चालीस वर्षों से श्री गुरुदेव के तारणहार चरण-कमलों में पूर्णतः समर्पित माताजी श्रीमती सुशीला देवी सिसोदिया जी अवकाश प्राप्त जेल अधीक्षक श्री डी० एस० सिसोदिया जी सि० आगरा की धर्मपत्नी हैं। श्री गुरुदेव जी के पुराने अधिकांश बालक सिसोदिया परिवार की गुरुनिष्ठासे भलीभांति परिचित हैं और बड़े करीब से उन्हें जानते पहचानते हैं। भक्ति मार्ग पर चलकर माताजी द्वारा तय की गई चालीस वर्षों की लम्बी योगमय जीवन यात्रा से जुड़े, पतित पावन महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा परम योगीश्वर श्री गुरुदेव की महान कृपाओं से सम्बन्धित प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, ऐसे अनेकों घटनाक्रम हैं जो हमारे लिए अत्यन्त, प्रेरणास्वरूप हैं। लगभग २०-२२ वर्ष पूर्व के श्री गुरुदेव के प्रवचनों का ऑडियो कैसेट ब्र० श्री सरकार बाबाजी के पास उपलब्ध है जिसमें श्री गुरुदेव भगवान ने स्वयं अपने पवित्र मुखारविन्द से कहा है—

"श्री दुष्यन्त सिंह सिसोदिया हमारे बड़े प्रिय बच्चे हैं। आजकल बुलन्दशहर में जेलर हैं। उनके यहां आये दिन श्री प्रभुजी की कृपा लीलाएं होती रहती हैं। हमारे कहने पर उन्होंने समस्त घटनाक्रमों को अपने व्याख्यान में सुनाया। व्याख्यान को उसी समय नोट कर लिया है। इन घटनाओं को 'सिद्धयोग' पत्रिका में शीघ्र ही प्रकाशित करा दिया जावेगा।"

श्री गुरुदेव के श्री चरणों में समर्पित मैं एक तुच्छ, अबोध बालक कुछ प्रमुख घटनाक्रमों को आप तक पहुँचाने का प्रयास कर रहा हूँ। त्रुटियों के लिए श्री गुरुदेवजी से तथा आप सभी 'सिद्धयोग' के प्रिय पाठकों से बारम्बार क्षमा चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे इस कार्य हेतु अबल शक्ति प्रदान करें एवम् मुझे समस्त गुरुभाई-बहिनों का असीम स्नेह व आशीर्वाद प्राप्त हो ऐसी परमानुकम्पा करें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पूज्यनीय माताजी का गुरुकृपाओं से लिपा-पुता जीवनपथ एवं निम्न वर्णित सभी प्रेम प्रसङ्ग पाठकों का केवल पथ-प्रदर्शन ही नहीं करेंगे बल्कि जीवन की अनेकों जटिल समस्याओं को सुलझाने में सहयोग प्रदान करेंगे।

शक्तिस्वरूपा माँ दुर्गा की कृपा से सद्गुरु प्राप्ति

चौदह वर्ष की अल्प आयु में माताजी (श्रीमती सुशीला सिसोदिया जी) का विवाह संस्कार हो गया था। बचपन से ही ईश्वर के प्रति प्रबल श्रद्धा थी, फलस्वरूप यह प्रबल श्रद्धा भगवती माँ दुर्गाजी में अटूट अनुराग लेकर प्रतिष्ठित हो गई। ससुराल में आध्यात्मिक मार्ग में किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं था, इनकी सासजी स्वयं कठोर धार्मिक नियमों का पालन करने वाली एक दृढ़ श्रद्धालु साधिका थीं। माताजी नित्यप्रति माँ दुर्गा की सप्रेम श्रद्धायुक्त होकर आरती-पूजन

किया करती थीं। विवाहोपरान्त दीक्षा-संस्कार कराने की पुरानी परम्परा परिवार में प्रचलित होने से, सभी विवाहित ससुराली-जन अपने परिवार के एक विद्वान गुरुजी से दीक्षित थे। परिवार की इस प्राचीन परम्परानुसार माताजी को भी पति सहित दीक्षा संस्कार के लिए प्रेरित किया गया। माताजी ने अपनी हृदयस्थ धारणाओं के अनुरूप दीक्षा ग्रहण करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा ये गुरुजी पूर्ण विद्वान अवश्य हैं, किन्तु मेरे हृदय में इनसे गुरुदीक्षा ग्रहण करने का कोई उत्साह नहीं है। एक रोज इनके परिवार के गुरुजी घर पर पधारे हुए थे उन्होंने माताजी को सम्बोधित किया कि बिना गुरु के ज्ञान होना सम्भव नहीं और न ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। जिनके कोई गुरु नहीं होते वे तीनों लोकों में कहीं भी सम्मान पाने के अधिकारी नहीं होते, निगुरे लोग सभी देवी-देवताओं के द्वारा उपेक्षित होते हैं। माताजी ने बड़े विनीतभाव से उनसे कहा—'महाराज जी! मैं आपका तथा आपके ज्ञानोपदेशों का पूरा आदर करती हूँ, किन्तु अभी मेरे हृदय में दीक्षा ग्रहण करने का कोई उल्लास नहीं है। जिन गुरुजी से मेरा दीक्षा ग्रहण करने का संस्कार बनेगा वे बड़े ही निराले, अनुपम व अद्भुत होंगे। ऐसा भाव मेरे हृदय में बचपन से ही उठा करता है। इसलिए श्रेष्ठ गुरु की तलाश में मेरा चित्त सदैव भटकता रहता है। माताजी के दृढ़ विचारों को श्रवण कर उन्होंने उत्सुकतापूर्वक प्रश्न किया कि समर्थ गुरु मिलने पर तुम्हें कैसे ज्ञात होगा कि यह वही परम गुरु हैं जिनकी तुम्हें वर्षों से तलाश थी। माताजी ने हँसकर उत्तर दिया—"अब यह तो समय ही बतलायेगा।"

इस वार्तालाप के कुछ वर्षों उपरान्त, एक दिन सन् १९५६ ई० में बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटित हो गई जो माताजी के आध्यात्म-जीवन की प्रथम एवं अनोखी घटना थी। उन दिनों बाबूजी (श्री डी० एस० सिसोदिया जी) बदायूँ जिले में जेलर थे। माताजी एकाग्रचित्त होकर प्रेम-भाव से करुणामयी माँ भगवती के पूजन में निमग्न थीं। धीरे-धीरे वे बेसुध होती जा रही थीं, तभी 'माँ' के परमानुग्रह से उन्हें त्रिजगत पावन घट-घटवासी सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहनजी महाराज का दिव्य-दर्शन हुआ और साथ ही साथ कानों में माँ की मधुर वाणी सुनाई पड़ी—"यही तुम्हारे गुरुदेव हैं, इनसे गुरुदीक्षा ग्रहण कर लो।" बस इतना ही नहीं, 'माँ' की इस दिव्य वाणी ने ऋषिकेश आश्रम तथा सवाई आश्रम के पते भी बतलाये जिन्हें माताजी ने समीप ही रखे कागज तथा पेन उठाकर तुरन्त लिख लिया। इस घटना के बाद से माताजी का किसी भी कार्य में मन नहीं लगता था। बस एक ही चिन्तन में चित्त लगा रहता था कि किसी भी तरह गुरुदेव के स्थूल रूप में दर्शन प्राप्त हों। माताजी की इस घटना को परिवार के सदस्यों ने गम्भीरता से नहीं लिया। मात्र एक भ्रम समझकर, इस घटना का उपहास उड़ाया। कुछ समयोपरान्त बाबूजी का स्थानान्तरण लखनऊ कारागार के लिए हो गया। इस जेल से बाबूजी पूर्णरूप से सन्तुष्ट नहीं थे अतः एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी (सुशीला जी) से कहा—जब तुम्हारे ऊपर तुम्हारे गुरुदेव की इतनी ही कृपा है तो उन्होंने हमें यहाँ लखनऊ में क्यों फँसा दिया है, अपनी देवी से कहो कि गुरुदेव हमें आगरा में क्यों नहीं बुला लेते? यह बात माताजी

के हृदय को भेद गयी। उन्होंने माँ दुर्गा के स्वरूप के समक्ष बैठकर अश्रुपूरित नेत्रों से स्तुति करके अपनी हृदय वेदना मन ही मन 'माँ' के समक्ष अभिव्यक्त की। माँ दुर्गा ने माताजी की आर्त पुकार को सुनकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस घटना के चार-पाँच दिन बाद ही बाबूजी को आगरा में ज्वाइन करने के ऑर्डर प्राप्त हो गये। घर में हर्षोल्लास का वातावरण बन गया। माताजी को भी अपने क्षेत्र आगरा में पहुँचने की खुशी तो थी ही, परन्तु उन्हें सर्वाधिक खुशी इस बात की थी कि अब गुरुदेव के परमधाम सवाई आश्रम पहुँचकर, उनके दर्शन एवं दीक्षा शीघ्रता से प्राप्त हो सकेगी। आगरा में पहुंचने के दो दिन उपरान्त गुरुपूर्णिमा का पर्व था। माताजी ने, बाबूजी से सवाई चलने का हठ किया। पहले तो वे इन्कार करते रहे कि अभी-अभी नये-नये जॉब पर आये हैं। हमारे ऊपर तो नौकरी की तमाम जिम्मेदारियाँ हैं, और तुम्हें अपनी पड़ी है। लेकिन बाद में गुरु प्रेरणा से शीघ्र ही सवाई आश्रम चलने के लिये वे तैयार हो गये।

जिसकी रज के कण-कण में आत्मानुभव होता हो, ऐसी दिव्य पवित्र भूमि पर निर्मित सिद्धाश्रम 'योग प्रशिक्षण केन्द्र' की सीमा में प्रवेश करते ही दोनों ने कुछ विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव किया। सचमुच प्रबल जिज्ञासा से होने वाला प्रथम गुरुमिलन तो होता ही बड़ा अनौखा है, इस पर जगदम्बा माँ दुर्गा द्वारा श्री गुरुदेव प्राप्ति की पूर्व घोषणा कोई कम आनन्दोत्पादक नहीं थी। माताजी ने असंख्य लोगोंको, चेहरे पर अद्भुत उत्साह लिये, गुरु-भक्ति में ओत-प्रोत देखा। दर्शनाकांक्षा से आए देश के विभिन्न भागों के आगंतुक नर-नारियों को, श्री गुरुदेव के पूजन हेतु, हाथों में फल पुष्पाहार आदि पूजन सामिग्री से सुसज्जित थाल लिए धैर्यपूर्वक पंक्तिबद्ध देखा। माताजी को गुरुदेव का प्रत्येक भक्त निराला नजर आता था, उनकी गुरुनिष्ठा के सम्मुख उन्हें अपना गुरुप्रेम अभिमान अति तुच्छ प्रतीत होता था। आश्रम के मुक्तिप्रद सौन्दर्य को निहारने के उपरान्त दोनों ने गुफा के दर्शन करके अपने नेत्रों को पवित्र किया।

निर्धारित समयानुसार गुरुदीक्षा-संस्कार कार्यक्रम शुरू हो गया। अन्य सभी दीक्षा अभिलाषियों के साथ ये लोग भी सम्मिलित होकर अपनी क्रम संख्या की प्रतीक्षा करने लगे।

मुखमण्डल पर अनुपम लावण्य और ईश्वरीय हास लिये गुरुदेव प्रसन्न मुद्रा में अपने सभी बालकों पर अपनी करुणामयी स्नेह वर्षा कर रहे थे। गुरुदेव के स्वरूप को अपलक निहारने पर हृदय में अति आनन्द की अनुभूति होती थी। अपना क्रम आते ही दोनों ने गुरुदेव के श्री चरणों में सप्रेम प्रणाम किया, और शिष्यत्व ग्रहण करने की तीव्र अभिलाषा उल्लसित हृदय से व्यक्त की। (अपने बड़े गुरुभाई श्री भुवनेन्द्र जी झा, उस समय गुरुदेव के इस दीक्षा कार्यक्रम में उनका सहयोग कर रहे थे।) गुरुदेव ने अपना कृपाहस्त दोनों के सिर पर रखकर दीक्षा प्रदान की। यह सब विस्मय विमुग्ध चित्त से निहारते हुए माताजी की निश्चल और निस्पन्द देह बार-बार कम्पित होने लगी। विशेष आश्चर्य की बात यह रही कि न तो इस 'गुरुभक्त युगल' ने श्री गुरुदेव के समक्ष अपना कोई परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत

किया और न ही गुरुदेव ने ही इसके विषय में कुछ जानने की इच्छा व्यक्त की। और इच्छा हो भी क्यों भला ? जिनका श्री गुरुदेव से जन्म-जन्मान्तरों से सम्बन्ध हो उनसे परिचय लेने की गुरुदेव को क्या आवश्यकता ? गुरुदेव का आदेश पाकर ये दोनों गुफा में ध्यान से बैठ गये। परम कृपानिधि की परमानुकम्पा से माताजी का तुरन्त ध्यान लग गया। देह में ब्रह्म ज्योति प्रस्फुटित होने लगी। उस प्रथम ध्यानाभ्यास में माताजी ने महाराज जी का दर्शन भव्य उज्ज्वल अनन्त आलोक में साक्षात शिव स्वरूप में किया। गुरुमिलन के प्रथम दिन ही इस प्रथम ध्यानानुभूति ने माताजी का जीवन ही बदल डाला। उनके हृदय में गुरु-निष्ठा पहले से कई गुना होकर प्रतिष्ठित हो गई। घर लौटने पर सायंकालीन आरती के लिए माता जी जब पूजा की अलमारी के सम्मुख पहुँची तो चित्त दुविधाग्रस्त हो गया, सोचने लगी—प्रथम, सदैव की भाँति माँ दुर्गाजी की आरती करूँ अथवा गुरुदेव की ? अन्ततः उन्होंने स्वयं ही एक प्रयोग के माध्यम से उचित हल निकाल कर अपनी शंका का समाधान किया। माताजी ने शुद्ध घी के दीपक को माँ दुर्गा जी को समर्पित करते हुए अपने मन में संकल्प किया, यदि पाँच मिनट के अन्दर ही यह दीपक जल गया तो मैं पहले गुरुदेव की आरती करूँगी। ऐसा हृदय में विचार करके घड़ी की तरफ अपनी दृष्टि स्थिर करदी। अद्भुत आश्चर्य ! वह दीपक जो पर्याप्त घी की मात्रा में मज-बूत बत्ती से प्रज्वलित हो रहा था, अचानक पाँच मिनट की अल्पावधि से पूर्व ही ज्योति-विहीन हो गया। इसी को माँ दुर्गा की आज्ञा समझकर सर्वप्रथम गुरुदेव की आरती की, तत्पश्चात् माँ दुर्गा सहित गणपति, लक्ष्मी आदि की आरती की।

माताजी पर श्री प्रभुजी की कृपा बरा-बर बरस रही थी। श्री महाप्रभुजी की आरती में ही दिव्य लोकों के, देवी-देवताओं एवम् सिद्धों आदि के दर्शन होने लगे। नित्य नव दिव्यानुभूतियों से मन सदैव अतीन्द्रिय राज्य में विचरण करने लगा। लगभग एक महीने तक यही क्रम चलता रहा, दिन भर मन गुरुदेव के पावन चरणों में ही मदमस्त एवम् उल्लसित रहता था। अचानक ध्याना-नुभव रुक गया। जब कुछ दिनों तक कोई अनुभूति नहीं हुई तो माताजी के उत्साह में लगातार गिरावट आने लगी। धीरे-धीरे उन्होंने श्री प्रभुजी का आरती-पूजन करना बन्द कर दिया। एक दिन माताजी को श्री गुरुदेव की आज्ञा कानों में सुनाई पड़ी। गुरुदेव ने चेतावनी दी कि सुशीला यदि तुम प्रभुजी की आरती नहीं करोगी तो तुम्हारी शारीरिक शक्ति दिन प्रतिदिन क्षीण होती चली जायेगी। दोनों वक्त पूर्ण स्वच्छता के साथ प्रेमपूर्वक श्री प्रभुजी की आरती करने से शारीरिक बल, आत्मबल एवम् मानसिक बल में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। अपनी भूल के लिए श्री गुरुदेव से हर प्रकार से क्षमा-याचना करके माताजी ने पुनः आरती-पूजन करना शुरू कर दिया। गुरुदेवा-नुग्रहस्वरूप धीरे-धीरे ध्यानस्थिति पुनः उत्कृष्ट अवस्था में पहुँचने लगी।

वर्षा-नियन्त्रण में महाप्रभुजी की चरणरज का चमत्कार

इस प्रकार समय धीरे-धीरे आनन्द के साथ व्यतीत होता रहा। माताजी के माध्यम से, उनके परिजनों-परिचितों में श्री गुरुदेव के

प्रति अच्छी श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। सवाई ग्राम, आगरा के समीप होने से, माताजी को एक बड़ा लाभ यह हुआ कि जब भी इच्छा हुई तुरन्त आश्रम पहुँचकर प्रभुजी के दर्शन कर लिया करती थीं। प्रभुजी ने एक दिन माता जी को प्रति सोमवार को महाप्रभुजी का कीर्तन कराने की आज्ञा प्रदान की। उस आज्ञा को, उस के बाहुल्य में शारीरिक रूप से अति दौर्बल्यता को प्राप्त होने के बावजूद, आज भी निभा रही हैं। आजकल जब भजनों में कोई भी उनका साथ देने वाला नहीं होता है तो दो चार भजन अकेले ही श्री महाप्रभु जी को सुनाती हैं।

प्रारम्भिक दिनों में रात्रि में जेलर साहब के सरकारी आवास में श्री प्रभुजी के मधुर कीर्तन का आयोजन प्रति सोमवार को किया जाता था। इसके अतिरिक्त पूज्यनीय माता जी ने दोपहर को व कभी-कभी शाम को भी तीव्र उत्साह, उमंग के साथ व्यापक स्तर पर महिला भजन सत्संग की परम्परा को चलाकर गुरुदेव की आज्ञा को पूर्णतः हृदय में उतार लिया। अपने गृहकार्यों से निवृत होकर सत्संग में सम्मिलित होने वाली अनेकों महिलाओं ने, श्री प्रभुजी का गुणगान करके अपना जीवन सफल बनाया। एक बार शाम को महिला सत्संग में अपेक्षा से अधिक भीड़ हो गयी। अतः घर में जगह सीमित होने के कारण सत्संग का आयोजन आवास के सामने खुले धरातल पर ही करने का विचार बनाया गया। इससे पहले कि भजन शुरू हो, घने मेघों से समस्त गगनमण्डल आच्छादित हो गया। ऐसा लगा मानो कुछ क्षणों में मूसलाधार वर्षा होगी और कार्यक्रम स्थगित करना पड़ेगा। विशेषतः माताजी को उन महिलाओं की सुरक्षा का विशेष ध्यान था, जो शहर के दूरस्थ स्थानों से, श्री महाप्रभु जी का गुणगान करने के लिए खुले मैदान में उपस्थित हुई थीं। वर्षा के पानी से सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था, सभी को भीगना ही था। भीड़ ज्यादा थी, सभी के लिये आवास में जगह अपर्याप्त थी। माताजी के हृदय में कुछ प्रेरणा हुयी वे तुरन्त श्री गुरुदेव के स्वरूप के समक्ष पहुँचीं और गुरुदेव का स्मरण करके प्रार्थना की। हे प्रभु! क्या आज भजन नहीं सुनेंगे? इतना कहकर माताजी अत्यन्त चिन्तित हो गयीं। तभी माताजी को श्री गुरुदेव की मधुर वाणी सुनाई पड़ी। "देवी! तुम चिन्ता मत करो, प्रभुजी की पावन चरणरज लेकर हाथ से आकाश में बिखेर दो।" श्री महाप्रभुजी की पवित्र, सदैव मङ्गलकारी चरणरज आकाश में बिखेरने के उपरान्त चार-पाँच घण्टे लगातार भजन-कीर्तन हुआ। इस दौरान बादल ज्यों के त्यों अपने स्थानों पर टँगे रहे। अब क्या करते भगवान इन्द्रदेव बेचारे? सद्गुरु की इच्छा के आगे आज तक किसी की चली है?

"करता करे न कर सके,
श्री सद्गुरु करे सो होय।"

इन्द्रदेव की शक्ति से प्रेरित एक बूँद की भी हिम्मत नहीं हुई जो आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की, खुले आकाश में लटकी पावन रजमय छतरी को, भेदकर सत्संग में व्यवधान उत्पन्न करती। किन्तु सत्संग समाप्ति के कुछ समय के बाद भारी वर्षा हुई।

सङ्गीत एवं गीता पाठ प्रशिक्षण

माताजी की बचपन से ही सङ्गीत में रुचि रही है। तबला, हारमोनियम सीखने की उनकी बचपन से ही हार्दिक अभिलाषा

थी। लेकिन माताजी की सासजी इन सब बातों के सख्त विरोध में थीं। अतः उन्होंने इस इच्छा को हृदय में ही दबाये रखा। सासजी के गुजरजाने के बाद, एक रोज माताजी ने श्री गुरुदेवजी से हारमोनियम सीखने की इच्छा व्यक्त की। गुरुदेव ने आदेश दिया कि श्री प्रभुजी के सम्मुख बैठकर, उन्हें हारमोनियम से भजन सुनाने का प्रयास किया करो, तुम्हें स्वतः ही हारमोनियम बजाने की योग्यता प्राप्त हो जावेगी। श्री गुरुदेव की वाणी बिल्कुल सत्य निकली, बिना किसी स्वर-सरगम ज्ञान आदि के ही वे हारमोनियम से बहुत अच्छे भजन गाने लगीं।

उन्हीं दिनों माताजी प्रातःकालीन आरती के बाद 'गीतापाठ' हिन्दी भाषा में किया करती थीं। एक दिन गुरुदेव ने उन्हें आदेश किया कि "संस्कृत के शब्दोच्चारण में कोई त्रुटि हो जाए तो कोई बात नहीं, गीता पाठ तो संस्कृत भाषा में ही करना चाहिए।" माताजी को संस्कृत पढ़ने में बहुत कठिनाई होती थी किन्तु जब गुरुदेव की आज्ञानुसार संस्कृत में ही बार-बार गीता पाठ करने का प्रयास किया तो गुरुदेव की महान कृपा से यह कार्य भी अति सरल और सहज हो गया।

हमको सिन्दूर मत लगाया करो

माताजी श्री गुरुदेव को सिन्दूर लगाती थीं। घर पर आरती-पूजन में वह नित्य ऐसा करती थीं। एकबार प्रेमवती जी के यहाँ भटियाना (मेरठ) में श्री गुरुदेवजी का योग-प्रचार प्रोग्राम चल रहा था। प्रेमवती जी की माताजी से अच्छी घनिष्ठता थी। उन्होंने माताजी को प्रोग्राम में सम्मिलित होने के लिए पत्र द्वारा सूचना भेजी थी। माताजी की प्रोग्राम में पहुँचने की हार्दिक इच्छा थी किन्तु नौकरी के मामलों में अत्यधिक व्यस्तता के कारण बाबूजी साथ में चलने के लिए तैयार नहीं थे और उन्हें अकेले भी भेजना नहीं चाहते थे। भटियाना के प्रोग्राम में एक दिन श्री गुरुदेव ने प्रेमवती जी से पूछा—"तुमने सुशीला को क्यों नहीं बुलाया?" प्रेमवती जी ने जो बात थी स्पष्ट बतला दी। गुरुदेव का आदेश पाकर उन्होंने अपने बड़े लड़के को आगरा जिला कारागार पर माताजी को लेने के लिए भेज दिया। इस लड़के के पहुँचने पर बाबूजी भी किसी तरह प्रोग्राम में चलने के लिए तैयार हो गये। प्रेमवती जी के लड़के के पहुँचने से एक दिन पहले माताजी अत्यन्त सोच-विचार में, प्रोग्राम में सम्मिलित न हो पाने की विवशता में बोझिल मन लिये अपने किसी घरेलू कार्य को कर रही थीं कि तभी माताजी को अपने कानों में गुरुदेव की वाणी सुनाई पड़ी जिसमें कहा गया कि तुम हमको सिन्दूर मत लगाया करो, हमारे कुर्ते पर झड़ता है और कुर्ता खराब हो जाता है। गुरुदेव की मधुर वाणी को सुनकर माताजी तो एकदम अपना धैर्य खो बैठीं, अब तो मन भटियाना, श्री गुरु चरणों में पहुँचने के लिये छटपटाने लगा।

दूसरे दिन प्रेमवती जी का लड़का गुरुदेव का आदेश लेकर पहुँच गया। गुरुदेव की अनुकम्पा से सभी समीप के व कुछ दूर के

भी भाई-बहन प्रोग्राम में सम्मिलित हुए थे। माताजी ने भटियाना पहुँचकर गुरुदेव को जब प्रणाम किया तो गुरुदेव बड़े प्यार से पूछने लगे—क्यों सुशीला कल कोई विशेष बात तो नहीं हो गई थी? माताजी ने बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया—"गुरुदेव आपने कहा था कि हमको सिन्दूर मत लगाया करो हमारे कुर्ते पर लगता है और कुर्ता खराब हो जाता है।" इतना सुनते ही गुरुदेव के परम सानिध्य में बैठे नर-नारी, मुक्त कण्ठ से तीव्र स्वरों में श्री गुरुदेव की जय-जयकार करने लगे। समस्त वातावरण गुरुदेव के जयघोष से गुञ्जायमान हो गया। माताजी के लिए यह दृश्य अति विस्मय-बोधक था। सोचने लगी मेरे लिए तो यह असाधारण घटना है और इस पर मेरा अचम्भित होना भी स्वाभाविक है किन्तु यहाँ उपस्थित गुरुभक्त समुदाय के लिये मेरी इस व्यक्तिगत घटना में ऐसी क्या विशेष महत्व की बात रही है जो घटना के स्पष्ट ज्ञानाभाव में भी लोगों को इतना प्रभावित कर गई है। मन में बार-बार यही प्रश्न उठता कि मेरे सूक्ष्म उत्तर को सुनकर इन लोगों में इतना प्रेम और उत्साह कैसे उत्पन्न हुआ? अवश्य ही कोई विशेष बात है जिससे मुझे भी अवगत होना चाहिए।

प्रोग्राम समाप्त होने के पश्चात् अपनी कुछ परम मित्र गुरु बहिनों से सम्पर्क करने पर उन्होंने बतलाया कि एक दिन पूर्व गुरुदेव ने अपने प्रवचनों के अन्तर्गत, सिन्दूर से पूजन करती हुई एक गुरु बहिन को, उन्हीं शब्दों में सिन्दूर लगाने से इन्कार किया जो शब्द तुम्हें तुम्हारे निवास स्थान पर सुनाई पड़े। एक ही समय में जिस बात को हम सभी ने यहाँ सुना उसीको तुमने ज्यों का त्यों अपने घर पर सुना। गुरुदेव के इस योगमय चमत्कार को देखकर कौन नहीं उनका जय-जयकार करेगा? वास्तविकता को समझने पर माताजी भी रोमांचित हुए बिना न रह सकीं। (क्रमशः) ✱

सद्गुरु वैद्य

श्री डा० श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी
एम. ए. (राज. विज्ञान), एम.ए. (दर्शनशास्त्र)
एम. एड., पी-एच. डी.

सद्गुरु वैद्य मिले तो फिर जीवन-कुसुम खिले।
कभी अस्मिता हावी होती
कभी राग औ' द्वेष पकड़ता
दुःख का कारण मूल अविद्या
अभिनिवेश है कभी अकड़ता
कह जायेंगे कृपा-कोर पा यह दुर्बन्ध किले।
इच्छाओं का बीहड़ जङ्गल
जिसमें घूमा करता है मन
प्यास निरन्तर बढ़ती जाती
मृग मरीचिका-सा यह जीवन
दाता मेरे मुझको इनसे कैसे मुक्ति मिले।
यम नियम आसन प्राणों का
संयम धारणा ध्यान समाधि
उन्मुख प्राणी अगर इधर हो
मिट जाये फिर सारी व्याधि
पाहन जैसे त्रिविध ताप भी इनके आगे हिले।
सद्गुरु एक चिकित्सक हैं
औ' मात्र चिकित्सा योग-साधना
दोनों हैं यदि पास हमारे
भव सागर है सहज नापना
मिट जायेंगे 'कुसुम' जगत के सारे शिकवे-गिले।

★★ परा-अपरा एवं योगारूढ़ मनुष्य ★★

□ पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक

ब्रह्म करुणानिधान श्री प्रभु जी से कृष्णावतार में, श्री उद्धव जी कहते हैं— "आप प्रकृति (जीवात्मा) से परे पुरुषोत्तम एवम् चिदाकाश स्वरूप 'ब्रह्म' हैं। फिर भी आपने स्वेच्छा से ही यह अलग शरीर धारण करके अवतार लिया है।"

त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः।
अवतीर्णोऽसि भगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः॥

(श्रीमद्भागवत ११/११/२८)

शक्तियाँ नित्य ही शक्तिमान के आधीन रहती हैं। जीव परमात्मा श्री प्रभु जी का अंश स्वरूप है परन्तु केवल अपरा (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवम् मिथ्याहंकारादि) प्रकृति के साथ सम्बन्ध जोड़ने के कारण इस जीवात्मा को प्रकृति कहा जाता है। अपरा प्रकृति के सम्बन्ध में अपने में कृति (कर्त्ता) मानने के कारण ही यह जीव रूप है। इन योनियों में, प्रकृति के परवश होकर, स्वयं के पाप-पुण्यों के फल हेतु जन्म लेकर, जीव व्यक्तिगत, संसारगत एवम् परमात्मप्राप्तिगत भावों में, विविध उद्देश्यों के कारण इन आठ प्रकार की उपरोक्त पृथ्वादि अपरा शक्तियों का उपयोग कर रहा जीव ही परमेश्वर की 'परा' शक्ति है। अतः जीव रूपी पराशक्ति से संचारित हुए बिना, भौतिक सृष्टि में कुछ भी क्रिया होना असम्भव है।

इस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवम् मिथ्याहंकार ही 'अपरा' प्रकृति है। इस अपरा प्रकृति और श्री भगवान में कार्य-कारण का सम्बन्ध है परन्तु 'परा' प्रकृति और भगवान में कार्य-कारण का सम्बन्ध नहीं है क्योंकि 'परा' प्रकृति जीव (चेतन) है और अपरा (जड़) है जिस प्रकार सोने का एक अंश भी सोना ही होता है। उसी प्रकार श्री भगवान जीव के लिए कारण कहे जाते हैं, 'कार्य' नहीं। क्योंकि जीवात्मा उनका ही अंश है। 'जीव' धारियों के लिये शरीर 'अपरा' तथा जीवात्मा 'परा' प्रकृति है। क्योंकि शरीर पञ्च भौतिक है अतः 'अंश'-'अंशी' की दृष्टि से परामात्मांश जीवात्मा ही 'परा' तथा 'अपरा' पञ्चभौतिकाणी है। अर्थात् 'परा' जो जीवात्मा है वह तो रहा ईश्वर अंश और (क्षिति, जल ...) पञ्चभौतिक इसका जो सम्बन्ध शरीर से है वह 'अपरा' हुआ। स्वयं के ज्ञान से वायुयान चलाना तो परा प्रकृति हुआ परन्तु मैं ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अच्छा चालक हूँ, यह तो हो गया अपरा प्रकृति। यहाँ पर समझने की गूढ़ बात यह हुई कि विज्ञान सहित ज्ञान को जानकर, जो मनुष्य इस बात का ही अनुभव कर लेवे और यही सोचे कि श्री प्रभुजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं, उनके समकक्ष कोई वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदि है ही नहीं और श्री परमात्मा ही मेरा लक्ष्य है, ऐसे निष्काम भाव-भक्ति की तल्लीनता वाले भक्त

के प्रति स्वयं श्री भगवान कहते हैं—"वह ही भक्त योगी है और वह परा-अपरा प्रकृति के जाल से निवृत्त रहता है" तथा "वह मेरे में और मैं उसमें हूँ" की भावना में मेरा स्वरूप बन जाता है। जिसे गीता संकेत करती है कि—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गीता ६/३०)

परन्तु जिस समय योगियों के ईश्वर अनन्त श्री प्रभु कृपा से, न इन्द्रियों के भोगों में तथा न कर्मों में ही आसक्त (जीव) होता है, तो उस समय वह सम्पूर्ण संकल्पों का त्यागी मनुष्य 'योगारूढ़' कहा जाता है।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्व संकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ (गीता ६/४)

प्रत्येक परिस्थितियों में हरेक जीव अपने कार्य-कारण-लालसावश बँधते हुये, व्यष्टि अर्थात् व्यक्तिगत मिथ्याभिमान के कारण सन्तुष्ट नहीं हो पाता और समष्टि अर्थात् संसारगत कार्य-कारण का उपालम्भ बन जाया करता है। इन्हीं स्थितियों के वशीभूत हो, जीवात्मा का रूप जड़ (अपरा) तथा चेतन (परा) के रूप में प्रत्यक्ष हो बैठता है। इसे टाला भी नहीं जा सकता क्योंकि यह प्रकृति (जीवात्मा) का स्वभाव है। परमात्मा का अंश होने से जीव परमात्मा से तो भिन्न है ही नहीं, किन्तु अपने स्वतन्त्रता के दुरुपयोगवश भिन्नता का रूप स्वयं ही ले बैठता है जिसके कारण लक्ष्य योनियों में बारम्बार द्वार-द्वार के समान भटकता फिरता है। यदि यह जीव अपने बन्धन कारक कर्तृत्व (मैं ही करने वाला हूँ) और भोक्तृत्व (मैं ही केवल शुभ ही कर्मों का भोग-भुक्त कर्ता) के भाव से, अपने स्वयं रूपी (मैं और मेरे) अहंकारत्व को हटा देवे तो यह जीवात्मा परमात्मस्वरूप है। प्रायः ऐसा ही पाया जाता है कि जब उन परम योगेश्वर अनन्तस्वरूप श्री प्रभु की परम कृपा ऐसी होती है कि यह जीवात्मा परा और अपरा प्रकृति से विमुख होकर परमात्मा के सम्मुख (निरीहवश अर्थात् सबसे ठेस पाकर) शरण्य हो जाती है तो उसे अपने (ईश्वरत्व) स्वरूप का बोध होने लगता है। ऐसी स्थिति में सांसारी-जीव बन्धनविमुक्तावस्था के कारण परम कृपालु श्री प्रभुजी में अनन्त, अगाध, असीम आनन्द का अनुभव करता है।

रहस्यमय बात तो यह भी है कि यह जीवात्मा श्री भगवान की 'परा प्रकृति' होकर भी सांसारिकता-वश या सांसारिक-विमुखता-वश इस दृश्यमान जगत को जो कि उन्हीं कृपालु द्वारा रचित 'अपरा प्रकृति' है, धारण कर रक्खा है तथा जगत को ही भूलवश स्थायी, सुन्दर और सुखप्रद मानकर 'मैं' और 'मेरे' रूप में ही इस जगत को जगत रूप (सुखासक्ति, पदार्थ संग्रह की लालसा) से सुखानुभूति करता है और मोहवश सोचने की शक्ति से दूर हो बैठता है कि—"जीवात्मा प्रतिक्षण जीवन में ही मरता और जीवित होता रहता है।" क्योंकि यह तो इसे मालूम ही है कि जो समय इस जीवात्मा का व्यतीत हो गया वह समय इस जन्म में आना फिर असम्भव है, उसके लिये वह शरीर मरा हुआ तथा आने वाला समय-सुखासक्ति लालसावश पुनः जीवित ही है।

अतः जिनकी भोगों और पदार्थों में जितनी आसक्ति है, आकर्षण है—उनको संसार और शरीर—स्थायी, सुन्दर और सुखप्रद मालुम होगा तथा मोक्ष प्राप्ति गौण-सा बनकर; रास्ते चलते जैसे किसी को मणि मिल जाय, ऐसे ही हमारी मुक्ति हो जाय तो अच्छी बात है—"मार्गे प्रयाते मणिलाभवन्मे लभेत मोक्षो यदि तर्हिधन्यः ॥ वाली बात ही जीवन्त रहती है। परन्तु जिन संस्कारी जीव की आसक्ति ग्रन्थियां योगारूढ़ अर्थात् आसक्ति रहित बन जाती है उनमें भोग और संग्रह के लिये किये जाने वाले कर्मों (परा-अपरा) के प्रति सर्वदा त्याग रहता है। वे हमेशा गोस्वामी जी के वचन को साकार करते फिरते हैं, जिसमें संकेत है—

अनारम्भ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिज्ञानी ॥

(मानस ७/४६/३)

धर्म से विरक्ति-योग, योग से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष प्राप्त योगारूढ़ अर्थात् आसक्ति रहित भाव होने पर त्याग, जीवात्मा के मनोभाव में संकल्पित रहते हैं क्योंकि शरीर छोड़ते समय धन तिजोरी में पड़ा रह जाता है, पशु जहां-तहां बँधे रह जाते हैं; स्त्री घर के दरवाजे तक ही साथ देती है; पुत्र श्मशान तक साथ देते हैं तथा शरीर चिता तक ही साथ रहता है। उसके बाद परलोक के मार्ग में केवल धर्म ही जीव के साथ जाता है।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि सुताः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

ऐसे सूक्ष्म दृष्टि वाले योगनिष्ठ जीवात्मा में वर्ण, आश्रम, विद्या, बुद्धि, योग्यता, पद, अधिकार आदि की अपनी विशेषता रूपी मिथ्याभिमान कदापि नहीं हो पाता, क्योंकि उसके अन्तर्गत उसके कहलाने वाले शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, क्रिया-फल आदि सब श्री प्रभु को अर्पित होते हैं अतः समर्पण वश, परा-अपरा के सम्बन्ध से स्वतः ही विच्छेद हो जाया करता है क्योंकि समर्पण में भगवान के प्रति ऐसा आकर्षण है कि उनकी स्वाभाविकता वश जीव उनकी ही ओर खिंचता रहता है; जिसे वेदव्यास जी एवं महर्षि श्री शुकदेव जी ने भी स्पष्ट रूप से कह दिया कि—"ज्ञान के द्वारा जिनकी चित् जड़ ग्रन्थि कट गई है, ऐसे आत्माराम मुनिगण भी भगवान की हेतु रहित (निष्काम) भक्ति किया करते हैं, क्योंकि श्री भगवान के गुण ही ऐसे हैं कि वे प्राणियों को अपनी ओर (स्वाभाविक महान आकर्षण) खींच लेते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहेतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः ॥

(श्रीमद्भागवत पुराण (१/७/१०)

धर्म तें बिरति जोग ते ज्ञाना।
ग्यान मोक्षप्रद बेद बखाना ॥ ((मानस ३/१६/१)

इस जीवन में हम सब परा-अपरा में से किसी एक का चिन्तन करने के ज्यादा अभ्यस्त हैं। दूरदर्शन, समाचार, उपन्यास आदि अनेकानेक प्रकार के गली-गली बिकने

वाले साहित्य हमारे चित्त को अपरा शक्ति (माया) के चिन्तन से भरकर विचार दूषित कर कर्म में उन्नत करा देता है। अतः निकृष्ट साहित्य में तल्लीन विचार शक्ति को श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में लगाना चाहिये क्योंकि श्री प्रभु स्वयं कहते हैं—"जो कोई भी अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ देह त्याग करता है, वह तत्काल मेरी परा-प्रकृति (मेरे स्वरूप) को प्राप्त करता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।"

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।

(गीता अध्याय ८ श्लोक ५-६)

विष्णु पुराण में श्री भगवान की सम्पूर्ण शक्तियों (परा-अपरादि) का वर्णन करते हुए बताया गया है—"परमेश्वर नाना प्रकार की अनंत्य शक्तियों से युक्त हैं, जो हमारे लिये सर्वथा अचिन्त्य हैं, इनमें परा (जीव) नामक दिव्य शक्ति है। मृत्युकाल में हम स्वेच्छानुसार इस संसार की अपरा शक्ति (माया) में तमोगुणता के कारण बने रह जाते हैं।" "विष्णु शक्तिः परा प्रोक्ता"। इसी बात को योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया—हे महाबाहो इस अपरा (जड़-प्रकृति) के अतिरिक्त "अपरेयमितिस्त्वन्यां"—मेरी एक जीव रूप (चेतन) प्रकृति भी है—"प्रकृति विद्धि मे पराम्।" और इन परा-अपरा के संयोग के परिणाम को बतलाते हुए स्पष्ट किया कि मेरी इन परा-अपरा शक्तियों ने—"भौतिक शक्ति से संघर्ष करते हुए ब्रह्माण्ड को धारण करती है।"

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् । (गीता ७/५)

ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम उद्भूत (जीव) ब्रह्मा को, देवता, मनुष्य और पशु आदि संसार के सब प्राणियों में सर्वोपरि माना जाता है। परन्तु उनसे भी परे एक परतत्व है जिसका कोई प्राकृत रूप नहीं है। और वह प्राकृत विकारों से पूर्ण मुक्त है, उस तत्व को जानने वाला भी अतीत हो जाता है। आओ हम सब "श्वेताश्वेतरोपनिषद्" के अमृतमय वचन का इस सन्दर्भ में कर्णपान करें—"परमात्मा श्री प्रभुजी ही परमतत्व ब्रह्म हैं वे अपनी विविध परा-अपरा शक्तियों से पोषक तत्व के रूप में निर्विवादतः सर्वव्यापक हैं। संसार के अन्धकार से सर्वथा परे श्री भगवान को (मैं) स्वयं जानता हूँ। उनके तत्व को जानने वाला ही जन्म-मृत्यु के बन्धन का उल्लंघन कर सकता है। उस परम पुरुषोत्तम के ज्ञान के अतिरिक्त मोक्ष का कोई अन्य पथ नहीं है, उनसे उत्तम अन्य कोई तत्व भी नहीं है। वे अणुतर तत्व से भी अणुतर एवम् महान से भी महान हैं। वृक्ष के समान मौन स्थित रहते हुए भी वे परव्योम को उद्भासित करते हैं और वृक्ष के मूल के समान अपनी विविध परा-अपरा शक्तियों का विस्तार करते हैं।"

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेवविद्वानमृत इहभवति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय ।
यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्तिकिञ्चित् ।। ✱

गुरुवर दो ऐसा वरदान

❀ श्री यशपाल जैन

गुरु दो ऐसा वरदान,
रहे सदा अविचल मन मेरा
आँधी आये या तूफान,
गुरुवर दो ऐसा वरदान !

बहुत कठिन है नर तन पाना
बहुत सरल है पशु बन जाना
ऐसी शक्ति मुझे दो सद्गुरु
करूँ सतत्—अवदान !

बोझ बड़ा है इस धरती पर
घनी व्यथा है कोमल उर पर
दो ऐसी क्षमता हे स्वामी
लाऊँ नया विहान !

धन की आज प्रतिष्ठा भारी
पद का मनुज बना अनुरागी
करो कृपा ऐसी हे स्वामी !
मानव का हो मान !

प्रेम छलकता रहे हृदय से
प्रकटे करुणा रोम रोम से
हे प्रभु, दो आशीष कि जिससे
करूँ अमृत का पान !

तुम हो शान्ति प्रेम के दाता
ध्यान योग के हो व्याख्याता
मुझे प्रेरणा दो प्यारे सद्गुरु
मन का हो संधान !

शक्ति हमारी सुप्त पड़ी है
चेतनता भी लुप्त पड़ी है
मार्ग दिखाओ हे मेरे गुरु
पाऊँ अन्तर – ज्ञान !

मुझे चाहिये नहीं अमरता
नहीं चाहिये जग की प्रभुता
रहूँ निकट मैं सदा तुम्हारे
ऐसा हो—आह्वान !

गुरुवर दो ऐसा वरदान।

★ जीवन से लिपट कर मत जिओ, क्योंकि जीवन एक आग है जला देगी। जीवन से न्यारे होकर मत रहो, क्योंकि तब आग बुझ जायेगी। इसे जलाओ और एक आग की तरह—अपने से अलग—लेकिन हथेली पर लेकर चलो। —अज्ञात

संकलनकर्त्री :
कुमारी सम्पदा शर्मा
(बड़ौदा)

अभेद्यः सर्वशास्त्राणामवध्यः सर्वदेहिनाम् ।
अग्राह्यो मन्त्रयन्त्राणां योगी युक्तः समाधिना ॥

जब योगी उक्त विधि से समाधियुक्त हो जाता है तो समस्त शस्त्रों से अभेद्य (न कटने योग्य) होता है, देही, (मनुष्य) सिंह, गज, व्याघ्र आदियों से नहीं मारा जाता और मन्त्र, यन्त्र मारणमोहनादि प्रयोग भी उस पर नहीं चलता है।

× × ×

बाध्यते न स कालेन लिप्यते न स कर्मणा ।
साध्यते न च केनापि योगीः युक्तः समाधिना ॥

जब योगी समाधि में स्थिर हो जाता है तो उसको जरा (बुढ़ापा) एवम् मरण (मृत्यु) पीड़न नहीं कर सकते, अर्थात् अजरामर हो जाता है। उस पर काल का वश नहीं चलता, पाप-पुण्य हेतु जिसके ऐसे कर्म-बन्धनों से लिप्त नहीं होता, कोई उसे विषय-वासना में नहीं लगा सकता और किसी के साधन में यह नहीं आता।

× × ×

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।

मिताहारयुक्त व्यवहार में रहकर जो योगी समस्त कर्मों में युक्त रहता है और निद्रा-जागरण भी युक्त रखता है अर्थात् कोई काम भी अयुक्त नहीं करता तथा पूर्वोक्त क्रियाओं में सावधान रहता है उसका योग दुःखनाशक कहलाता है।

× × ×

निरालम्बं निरालम्बं निष्प्रपञ्चं निरामयम् ।
निराश्रयं निराकारं तत्वं जानाति योगवित् ॥

जब योगी उक्त विधि से समाधि में स्थिर हो जाता है तब परम-तत्व जिसका आद्यन्त नहीं, किसी के आलम्बन (निमित्त) में नहीं, माया आदि किसी के आश्रय में नहीं, द्वैत कल्पना में नहीं, ऐसे जीवात्मा परमात्मा के ऐक्य आत्मस्वरूप तत्व को जानता है।

सम्पादकीय निवेदन

फरवरी-मार्च का संयुक्त अङ्क

योग-योगेश्वर आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी की अपार अनुकम्पा से श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज का परम पावन जन्मोत्सव समारोह इस वर्ष चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी, व नवमी दि० १४, १५ एवं १६ अप्रेल दिन सोमवार, मंगलवार, बुधवार को श्री सिद्ध गुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा) में बड़ी धूमधाम से मनाया जायगा, उसके साथ ही 'सिद्धयोग' अपने जीवन के २९वें वर्ष को पूरा कर ३०वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। योग के सिद्धान्त एवम् शिक्षाओं के प्रचारार्थ ही परमपूज्य गुरुदेव जी ने 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ किया था। उनके शुभ संकल्प से अब तक यह अबाध गति से प्रकाशित होता चला आ रहा है। इसमें किसी भी प्रकार के विज्ञापनों को ग्रहण न करना पूज्य सद्गुरुदेव की घोषित नीति का पालन अब तक होता चला आ रहा है। श्री गुरुदेव के तिरोहित हो जाने के बाद इसके ग्राहक के रूप में थोड़े ही गुरुभाई-बहिन सहयोग दे रहे है अतः उससे प्राप्त शुल्क से पूरे वर्ष का प्रकाशन व्यय नहीं चल पाता है जिसकी पूर्ति के लिये सम्पादक व व्यवस्थापक मण्डल को अनुदान के रूप में स्थान-स्थान से धन की व्यवस्था करनी पड़ती है।

'सिद्धयोग' का प्रस्तुत अङ्क फरवरी व मार्च का २९वें वर्ष का ग्यारहवाँ व बाहरवाँ अङ्क है जिसे संयुक्ताङ्क के रूप में प्रकाशित करके पाठकों की सेवा में प्रेषित किया जा रहा है। इस अङ्क के साथ सभी ग्राहकों का २९वें वर्ष का मूल्य जो जमा कराया गया था समाप्त हो जाता है। अतः सभी ग्राहक-अनुग्राहक गुरुभाई-बहनों से निवेदन है कि नये ३०वें वर्ष का मूल्य ६५ रु० सिद्धयोग कार्यालय, सवांई (आगरा) में पहुँचकर ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा अथवा ब्र० दासलाल शर्मा के पास जमा करना चाहिए या मनीआर्डर द्वारा इन्हीं के नाम से सिद्धयोग कार्यालय, श्री सिद्ध गुफा, योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा) के पते पर भेजा जाना चाहिए। वी० पी० से 'सिद्धयोग' मँगाना ग्राहकों को बहुत व्ययसाध्य होगा। इसमें मूल्य के अतिरिक्त वी० पी० से भेजने में लगभग ५ रु० अतिरिक्त व्यय ग्राहकों को और देना होगा। अतः मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजने में ही सुविधा रहेगी।

अतः 'सिद्धयोग' के सभी पाठकों एवं गुरुभाई-बहनों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें तथा अन्यों को ग्राहक बनने-बनाने की प्रेरणा दें। मण्डलानुसार जिन-जिन अधिकृत गुरुभाई-बहनों का नाम निर्धारित है उन्हें अपना पावन कर्त्तव्य समझते हुए इस ओर तत्परता से जुट जाना चाहिए ताकि 'सिद्धयोग' स्वावलम्बी बन सके। कागज आदि की कीमत में निरन्तर वृद्धि होने के कारण इसके मूल्य में भी वृद्धि करना आवश्यक हो गया है।

'सिद्धयोग' के प्रकाशन में जिन लेखकों, कवियों तथा ध्यानयोगियों के प्रेरणाप्रद लेखों से 'सिद्धयोग' प्राणवान बना हुआ है, इस अवसर पर उन्हें हम विनम्रतापूर्वक हार्दिक धन्यवाद अर्पित करते हैं और उनसे आशा करते हैं कि इसी प्रकार के योग सम्बन्धी अपने सारगर्भित लेखों को भेजते हुए हमें अनुगृहीत करते रहेंगे। जीवन-धन गुरुदेव ही 'सिद्धयोग' के सर्वस्व है। इसकी भावी सफलता के लिये हम और आप सभी श्री सद्गुरु के चरण-कमलों का पावन चिन्तन करते हुए आगे बढ़ें।

विनयावनत :
सद्गुरु चरणरज
ब्र० दासलाल शर्मा

RUARY - MARCH

सिद्ध योग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुरु योग-अभिजन केन्द्र सवांई (एत्माद्पुर) आगरा।

श्री .....

.....

.....

.....

विनय प्रेम बस भई भवानी।
खसी माल मूरत मुसकानी॥ —सन्त तुलसीदास

विनय ऐसा सुन्दर गुण है जो दूसरों के हृदय को अपनी तरफ खींचता है। विनयशील मनुष्य दूसरों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यह विनय की महत्ता है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने बहुत सुन्दर बात कही है। कहा है कि अगर आप ब्रह्म ज्ञान चाहते हैं तो आप ऐसे व्यक्तियों के पास जायें कि जिन्हें यह ज्ञान उपलब्ध है। जो ब्रह्मज्ञानी हैं, उनकी सेवा सुश्रूषा, छल-कपट छोड़कर करें तो वे यह ज्ञान आपके हृदय में उड़ेल देंगे।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (गीता ४/३४)

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय रंगालाल शर्मा द्वारा कमर्शियल प्रिन्टिंग प्रेस, बर्फ कलां, ताजगंज, आगरा-२८२००१ (उ० प्र०) से मुद्रित एवं श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा) से प्रकाशित। फोन : ३३